R.N.I.No.-CHHHIN16015 डाक पंजीयन संख्या–छ.ग./बस्तर/28/2015–17

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,

जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•अंक–4, मार्च–मई 2015

प्रकाशक एवं संपादक

सनत कुमार जैन

सह संपादक

श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'

शशांक श्रीधर

महेन्द्र कुमार जैन

शब्दांकन

अनूप जंगम/सनत जैन

मुख पृष्ठ

श्री वेंलगूर मण्डावी

रेखांकन

श्री नवल जायसवाल

प्रभारी उत्तरप्रदेश

श्री शिशिर द्विवेदी

सहयोग राशि:–साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन 50 रूपये जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। रचनाओं के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
फोनवार्ता/6
बहस/कहानी प्रतियोगिता के बहाने/7
लघुकथाएं/ओमप्रकाश बजाज/11
बहस/हिन्दी में छुआछूत/12
ग़ज़लें/नसीम आलम 'नारवी'/14
कहानी/लिफ्ट/देव भंडारी/15
काव्य/जयप्रकाश मानस/17
कहानी/खोया क्या ?/जय मरकाम/18
कहानी/काश/बकुला पारेख/20
कहानी/पुरस्कार/कुमार शर्मा 'अनिल'/24
कहानी/पीर पर्वत...../माला वर्मा/28
लघुकथाएं/विमल तिवारी/33
कहानी/प्रेम के रंग/मनजीत शर्मा 'मीरा'/34
काव्य/सुनील श्रीवास्तव/36
परिचय/नसीम आलम 'नारवी'/प्रभाकर चौबे/37
परिचय/नसीम आलम 'नारवी'/लोकबाबू/38
ग़ज़लें/नसीम आलम 'नारवी'/39–40
बातचीत/नसीम आलम 'नारवी'/41
काव्य/रश्मि पाठक/42
काव्य/प्रीति प्रवीण खरे/शिवराज प्रधान
काव्य/आशीष आनन्द आर्य/करमजीत कौर/44
काव्य/ डॉ सूर्यपकाश अष्ठाना/श्री हरि वाणी/45
काव्य/कंचन सहाय वर्मा/यादव विकास/46
बढ़ते कदम/रेखराम साहू/दिवाकर दत्त त्रिपाठी/कृपाल देवांगन/47
काव्य/जे. कुमार संघवी/48
काव्य/माधुरी राऊलकर/डॉ. आशा पाण्डेय/49
काव्य/राजकुमार कुम्भज/ज्ञानेन्द्र साज/50
रंगीला बस्तर/शिवशंकर कुटारे/51
आलेख/अज्ञेय/डॉ. पी.एन.द्विवेदी/53
काव्य/पूर्णचंद्र रथ/उर्मिला आचार्य/55
समीक्षा/मन्नू भंडारी जायेगा मंगल पर/56
पुस्तक अंश/मन्नू भंडारी जायेगा मंगल पर/57
काव्य/शैल चन्द्रा/58
नक्कारखाने की तूती/59
काव्य/यशवंत गौतम/पत्रिका मिली/60
साहित्यिक उठापटक/61
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/63

लघुकथा

सफलता

वह मेरा पड़ोसी, सहपाठी और सजातीय था। मैं न जाने क्यों उससे प्रतिद्वंदिता रखता था। जब वह पहली बार सफल हुआ तो उसे पांच बर्तनों का सेट पुरस्कार–स्वरूप मिला। मैंने उसकी उपेक्षा की। दूसरी बार जब वह सफल हुआ तो, मैंने उसका उपहास उड़ाया। उसकी तीसरी सफलता के दौरान मैंने उसके चरित्र पर कीचड़ उछालते हुए उसे खूब बुरा–भला कहा और उसे बुरी तरह लताड़ा।

आज वह सफलताके उच्चतम शिखर पर है, और मैं उसे पूजता हूं।

आलोक कुमार सातपुते

832, सेक्टर–05 हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सड्डू, रायपुर–492014 छ.ग.

मोबाइल–09827406575

पाठकों से रूबरू

वर्तमान विकास व भविष्य के विकास की काल्पनिक तस्वीर कुछ ऐसा सोचने पर मजबूर कर देती है कि दिमाग हिल जाता है। व्यक्ति के जीवन में मशीनीकरण यूं बढ़ गया है कि व्यक्ति खुद मशीन हो गया है या यूं कहें कि उसे खुद मशीनों के सहारे जीना पड़ रहा है, कुछ विरोधाभास है यहां देखिए– चश्मा, कान की मशीन, बिजली वाला हाथ, पेसमेकर, बिजली वाली कुर्सी आदि तो व्यक्ति के शरीर में ही लगाई जा रही है। इसे विकास का अवदान कह सकते हैं पर इसी विकास ने विकलांगों को दोयम नहीं कर दिया है ? अनुपयोगी नहीं बना दिया है ? बुजुर्गों की भूमिका शून्य नहीं कर दी है ?

विकास के इस माडल ने जो घटनाक्रम बनाया है इससे तो दुनिया भर के जीव भयभीत हैं चाहे तो वह खेतों का रक्षक केंचुआ हो, या फिर बड़े और दीर्घायु वृक्षों की पारिस्थिति का रखवाला कौआ हो या फिर खुद मानव हो जो इस तंत्र का मुखिया है। विकास की वर्तमान आवधारणा तो बहुतों के लिए विनाश की अवधारणा है। एक बड़े बांध से मानव के लिए पानी बिजली मिलती है तो उसी बांध से भूकंप, जलवायु परिवर्तन, विस्थापन आदि आप ही मिल जाते हैं। निरापद विकास की संकल्पना क्या आधुनिक विज्ञान से संभव है ? बगैर पारिस्थितिक तंत्र को छेड़े, बगैर मानव जीवन को नुकसान पहुंचाये इस आधुनिक विज्ञान से संभव है ?

विकास के वर्तमान माडल ने साहित्य के भी चिथड़े उड़ा दिये हैं। वैसे तो यह कहना और सोचना असंभव है कि साहित्य से समाज बनता है, क्योंकि समाज के संस्कारों, रीतिरिवाजों और जीवनशैली से साहित्य का जन्म और निर्माण होता है, हमने तो इन्हीं मूल्यों को विकास के हवनकुण्ड में आहुति स्वरूप झोंक दिया है तो फिर साहित्य के बचे खुचे रहने की गुंजाइश कहां है ? इसके बाद भी हम सब उल्टीं गंगा बहाना चाह रहे हैं और साहित्य से समाज का निर्माण करना चाह रहे हैं। बिल्कुल खोवे से दूध बनाने की तरह या जीवनवृत्त के अनुसार आंकलन करके किसी व्यक्ति की जन्म कुण्डली बनाने की तरह।

भले ही उपरोक्त आंकलन विषय से भटका महसूस हो पर जुड़ा तो विषय से ही है। वर्तमान साहित्य में साहित्य के अतिरिक्त वो सबकुछ है जो साहित्य नहीं है, पर कुछ महापंडितों द्वारा लगातार साबित यही किया जा रहा है कि यही विकसित साहित्य है। कुरीति, बुराईयों से निकल सकने की समझ देने वाला साहित्य तो नजर ही नहीं आता है। विकास की दौड़ में स्त्री की आजादी का मुद्दा बनाकर उसका रूपचित्रण (पढ़े यौनचित्रण) करना ही साहित्य हो गया है। साहित्य के बाल की खाल निकालना ही साहित्य है। निराशा, हताशा और मुश्किलों के बीच फंसे व्यक्ति, परिवार, समाज का चित्रण (मात्र चित्रण) ही साहित्य है। असाध्य बीमारी से घिरे व्यक्ति का चित्रण ही साहित्य है। मानसिक/भौतिक नैराश्य को बढ़ावा देना और व्यक्ति की जीवटता को कमजोर करना साहित्य कब से बन गया है ? जहां इस देश की संस्कृति में किसी व्यक्ति की मृत्यु पर भी गीत गाकर दुख व्यक्त किया जाता है; वहां साहित्य को नैराश्य से भर दिया गया है। वर्तमान जीवन जितना सुविधा सम्पन्न हो गया है उतना ही दुख से भर भी गया है। हर परिवार का कोई एक सदस्य असाध्य बीमारी से जुड़ा है।

आज की सबसे बड़ी बीमारी है सड़क एक्सीडेन्ट! इस सड़क एक्सीडेन्ट में हर किसी का जीवन दांव पर लगा है, कोई भी अपनी मृत्यु के न आने के लिए आशान्वित नहीं है। कभी भी, कहीं भी दुर्घटना हो सकती है। अपंग होना या मर जाना संभव है। कैंसर, डायबिटीज, बीपी, हृदयघात ये अलग झपट पड़ने को तैयार खड़े हैं।

क्या ये सब विकास के चिन्ह हमने, खुद ने नहीं लाद रखे हैं ? इसके वजन से दोहरे होते जा रहे हैं और फिर होंठों पे मुस्कान है। ये कैसा साहित्य हैं ? ये कैसा चित्रण हैं ? जो हमें यह सच्चाई नहीं बताता है। सच का आईना नहीं दिखाता है। इन पर्यायों को ओढ़ने, पहनने से बचने का संदेश कहां है ? कहां है सही और गलत की समझ पैदा करने वाला साहित्य ? अभी तो बाजार में जनता को आदम हौव्या की काल्पिनिक दुनिया में घूमने का ही साहित्य उपलब्ध कराया जा रहा है ? नैतिकता का तो नामोनिशान ही मिट गया है। गनीमत यह है कि साहित्यिक पत्रिकाएं कम बिकती हैं वरना पूरा देश कपड़े उतार कर उन्मत हो चुका होता। मिट्टी से जुड़े लोग हैं आज भी।

बीमार और बीमारी का चित्रण और उससे जुड़े विवादित से प्रसंग कविता और कहानियों में लगातार छप रहे हैं। स्तन केंसर के आपरेशन के बाद स्त्री की संभावित सोच और पुरूष साथी की सोच का वाहियात चित्रण समाज को क्या संदेश दे रहा है ? अगर किसी के मन में उन रचनाओं में दर्शाये विचार नहीं भी उठ रहे हों तो भी उन्हें पढ़कर लोग जान समझकर जीवन दर्शन मान लें ? पाठक को सबकुछ जानना जरूरी है– सही और गलत! क्या पाठक के पास दिमाग नहीं है जो सही या गलत का फैसला कर सकें ? ऐसा पाठक जिसके पास विवेक नहीं है वो इंसान थोड़े ही हैं ? ये जुमले, जुगाली में लगातार चब रहे हैं।

देश की संस्कारित और समृद्ध परंपरा में रचे बसे लोग गीता के संदेश, कृष्ण के वचन, कोई किसी का नहीं है, सभी आत्मा अलग हैं, आदि को भूलकर अपने लोगों के दुख–दर्द में दुखी बना रहता हैं। ऐसे में कोई पुरूष अपनी स्त्री के बीमार होने पर और स्तन निकाल लिए जाने पर उससे विरत हो जायेगा ? या फिर वासनामयी खेल के न खेल पाने के लिए अपनी किस्मत को कोसेगा ?

नहीं! इस भारत भूमि में यह संभव नहीं हैं। अगर किसी ने इस पहलू को देखा है, समझा है तो वह स्वयं समझ ले कि उसे क्या कहें। इसी प्रकरण में स्त्री अपनी देह को टटोल कर अपने स्त्रीत्व को खोजती है। अपने को अधूरा समझती है। क्या ये सब बताना, दर्शाना, रेखांकित करना ही साहित्य हैं ? या फिर इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी उन पति–पत्नी की जीवटता में कमी न आना, बताना ही साहित्य हैं ?

नैराश्य चित्रांकन साहित्य की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह की तरह खड़ा है। इस कठोर और निर्मम समय में समाज तो विभाजित हो चुका है। परिवार के मायने पति–पत्नी और बच्चे बन गये हैं जिस पर अब पति और पत्नी को भी अलगाया जा रहा है। क्या इस आन्दोलन का प्रणेता साहित्य को बनना चाहिए ? साहित्य की ही देन है जो 'पति–पत्नी' युग्म के रूप में लिखे जाते थे वे अब पति और पत्नी के रूप में लिखे जा रहे हैं। परिवार का नाम लेते ही दादा–दादी, चाचा–चाची, बुआ आदि से भरा पूरा बगीचा नज़र आता था अब 'परिवार और बच्चे' कहा जाता है। परिवार यानि 'पति और पत्नी', बच्चे भी विलग गये हैं। पूछा जाता है 'और भाई, परिवार का क्या हालचाल है ? बच्चे कहां पढ़ रहे हैं ? मां कैसी है ?' ये तो हमारे देश के संस्कार नहीं हैं। हमारे यहां तो शब्द और उसके मायने एकदम स्पष्ट हैं तो फिर ऐसा साहित्य क्यों रचा जा रहा है ? किस–किस की सहमति है इसमें ?

इस नैराश्य भरे साहित्य के सृजन में आजकल यह प्रचलन जोरों पर है कि आसध्य बीमारी से ग्रसित व्यक्ति की मानसिक और व्यवहारिक (भौतिक) दशा का चित्रांकन! व्यक्ति किस तरह हौले–हौले मृत्यु की ओर अग्रसर है, कैसे उसके व्यवहार में चिड़चिड़ापन आता है। वह परिवार की हर बारीक गलती को ही ढूंढता है। उसे मालूम है कि उसे तो मरना ही है। अपनी जीवन शक्ति को समेटकर लड़ने की जगह खुद को मौत के हवाले कर देता है। वह अपने इस जीवन से कुछ भी अपेक्षा न रख खुद को अग्नि कुण्ड की सबसे तेज जलने वाली लकड़ी मानकर ही चलता है।

इधर उसका परिवार उसकी जिम्मेदारियों से परेशान है। डॉक्टर, महंगी दवा, तिमारदारी, बिगड़े बजट और सभी घरों में होने वाली सामान्य जवाबदारियों के बीच, सामंजस्य बैठाने का प्रयास तो दूर सामंजस्य बैठाना ही नहीं चाहता है। बीमार के प्रति ''कर्तव्य'' के भाव तो हैं ही नहीं बल्कि अहसान के भाव हैं। बेफालतू या बोझ उठाने के भाव पल–पल दृष्टव्य हैं। क्या यह हमारी संस्कृति है ? या फिर ऐसा होना जायज है ? यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार के लिए ही समर्पण भाव नहीं रखता है तो ऐसे व्यक्ति से समाज और देश के प्रति निष्ठा संदिग्ध नहीं है ? ऐसे लोग ही देश को बेचने के लिए लाइन में आगे खड़े होने के लिए लड़ नहीं रहे हैं ?

हमारे किसी भी कार्य की सार्थक उपलब्धि क्या रही, ये सोचने/बताने कौन आयेगा ? जब हम साहित्य की मर्यादाओं को ही नहीं देखना चाहते हैं तो साहित्य से समाज को बदल देना बेमानी ही होगा! हम नैराश्य का वातावरण बनाने में अपना योगदान देकर क्या साबित करना चाहते हैं यही न कि इस विषय पर किसी ने नहीं लिखा, या फिर इस पर लिखने की हिम्मत चाहिए! क्या ऐसा नहीं लगता कि शायद ही ऐसा विषय हो जिस पर भारत के समृद्ध साहित्य ने अपना दृष्टिपात् न किया हो। पर वह दृष्टिपात् सार्थक व निरापद था। परिवार, समाज, देश पर नकारात्मक प्रभाव नहीं डालता था। हम अपनी संतान को ऐसी शिक्षा देकर खुद के लिए खाई नहीं खोद रहे हैं ? परिवार को ईकाई मानने से पहले इस देश में गांव को ईकाई माना जाता था और अब हम व्यक्ति को ईकाई मान रहे हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात कि साहित्य की प्रत्येक विधा में ''हैप्पी इंडींग'' से ''तथाकथित महापंडित'' लोगों को इस कदर तकलीफ क्यों है ? निराशा का वातावरण बनाने से फायदा क्या है ? 'हैप्पी इंडीग' व्यक्ति को परिस्थिति से लड़ सकने की क्षमता से लैस करती है। हर परिस्थिति में खुश रहने के तरीके ढूंढ लेने की क्षमता विकसित करती है। अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत बनाती है तो फिर हम इस संजीवनी बूटी को फेंककर खुश क्यों हो रहे हैं ? हैप्पी इंडींग और लेखक का बताया अंत भ्रमित लोगों के लिए रामबाण औषधी बन सकता है। भ्रम में पड़े समाज को और भ्रम में डालकर स्वयं को महान समझ लेने की सोच क्या सही हो सकती है ?

मृत्यु तो अवश्य संभावी हैं तो क्या हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे हम ? मृत्यु दिवस की तारीख जिस दिन पता लगती है तो क्या उस दिन से ही अपनी मृत्यु मान लें ? या फिर उस दिन से अपना दूसरा और अलग तरह का जीवन मानकर कुछ सार्थक करने में लग जायें, जुट जायें। खुद के लिए और दूसरों के लिए भी मिसाल बनें। मृत्यु दिवस की तारीख जान लेने के बाद से मृत्यु दिवस तक का सफर कुछ यूं बितायें कि खुद की जिन्दगी खुद के लिए और दूसरों के लिए भी बोझ न लगे। 'हैप्पी इंडींग' मात्र स्वयं को भुलावे में रखने की वाहियात सोच नहीं है जैसा कि बताया जाता है, बल्कि सुदृढ़ परिवार और समाज की निर्माण भूमि है। इसके बाद परिवारों और समाज से देश भी तो बनता है। निराशा तो हमने ओढ़ रखी है। वर्तमान, विकास की डोर को थाम रखा है जिसकी मंजिल का स्वरूप बहुत कुछ हम देख रहे हैं फिर भी खुद को शिव मानकर गरल पीने का प्रयास कर रहे हैं। लिखे को सत्य मान लेने की सोच व्याप्त है तो फिर हम क्यों एक ऐसे समाज के निर्माण के भागीदार बने जो कमजोर से कमजोर होता जाए।

यह नहीं हो कि साहित्य के सृजन सभी कुछ अच्छा ही हो परन्तु कुछ तो हमारा विवेक हो। उत्कृष्ठ साहित्य ऐसा हो कि भले वह किसी को अच्छी प्रेरणा न दे रहा परन्तु किसी के लिए नुकसानदायी न हो। नये तरह के सृजन की अपेक्षा में ऐसा कुछ नया न रचने का प्रयास करें जो मानवता के मूलभूत सिद्धांतों की धज्जियां उड़ाता हो। दलित सृजन के नाम पर सवर्ण को गरियाना ही उसके उद्देश्य की पूर्ति करता है ? ये भी एक प्रश्न है जिस पर सोचना जरूरी है। मात्र बदला लेने के लिए कहानी के पात्र की कल्पना करना भी समाज में एक निराशा फैलाता है। ऐसी निराशा से बचकर चलने की वर्तमान आवश्यकता है। अतिरंजित चित्रण चाहे किसी भी पक्ष का हो माहौल खराब करता है क्योंकि ऐसे प्रकरण घटना बनकर जीवन में आते जरूर हैं परन्तु अपवाद स्वरूप होते हैं। हम और स्वयं विचार करें कि इस देश में यदि कैंसर का पता चलने के बाद कितने लोग मरीज को ईश्वर के भरोसे छोड़ देते हैं ? वे तो अपनी शक्ति के अनुसार पूरा जोर लगा देते हैं, उसके बाद भी अनुरूप परिणाम न मिले, वह बात अलग है।

आज नकारात्मक सोच को बढ़ावा देने के कारण अनेक समस्यायें परिदृश्य में आ रहीं हैं जो कि सामाजिक समरसता के लिए खतरे की तरह हैं। किसी कार्यालय जाने पर आरक्षित वर्ग का अधिकारी हो तो अनारक्षित वर्ग का व्यक्ति अपने काम के न हो सकने की पूर्ण अपेक्षा कर लेता है तो इसके विपरित भी घटता है। जबकि किसी एक–दो के साथ हुई घटना को आधार मान कर सभी को एक ही तराजु में तौलना कहां की समझदारी है ? इस अविश्वास के संकट के कारण वर्तमान साहित्य के 'विमर्श' हैं, जो लगातार व्यक्ति को वही दिखा रहे हैं जिससे आपसी विश्वास पर चोट पहुंचे और समाज का ताना–बाना छिन्न–भिन्न हो जाये।

ऐसा नहीं है कि वास्तविकता का चित्रण ही बंद कर दिया जाये, चित्रण हो पर नकारात्मक न हो। विरोध के स्वर हिंसात्मक न हों, निराशाजनक न हों। किसी से बदला लेने के लिए हिंसा के स्थान पर अहसान का दबाव भी तो मारक हो सकता है। बीमार का चिड़चिड़ापन दूर करने के लिए उसे किसी काम में भी तो लगाया जा सकता है, उसके मन को शान्ति देने वाले उपायों से जोड़ा जा सकता है। पुरानी चौपाल वाली व्यवस्था शुरू की जा सकती है, घर में बंद करके टीवी के सामने बैठाकर बीमार बनाने वाली अपनी सोच बदलने का संदेश दिया जा सकता है।

एजेण्डाबद्ध कहानियों की थीम अपने परिवेश की समस्या पर जरूर है परन्तु नकारात्मक है। हम यदि कहानी में बताते हैं कि कालोनी का चौकीदार एक लड़की से रेप कर लेता है तो सारे चौकीदार बलात्कारी हो जाते हैं। इस कहानी के बाद सभी पत्रिकाओं में ऐसे 'बलात्कारियों से जुड़ी घटनाओं पर कहानियों की बाढ़ आ जाती है। लगातार बढ़ते इस बलात्कारी पानी में बेचारे सज्जन चौकीदार जो कि निन्यानब्बे प्रतिशत से ज्यादा होते हैं, वे बह जाते हैं। समाज की सोच हो जाती है छोटा आदमी ऐसा ही होता है। वह प्रयोगवादी जिसने पहली कहानी लिखी थी वह प्रणेता बन कर खुशनसीब हो जाता है, समाज जाये भाड़ में। ऐसी स्थिति में चौकीदार भी स्वयं को बलात्कारी मानकर वैसा ही व्यवहार करने लगता है। हम सोचते हैं हमारा लिखा कहां सामाजिक परिवर्तन करेगा, पर करता है परिवर्तन।

समझौता करने की प्रवृत्ति, सहन करने की सोच, एडजस्टमेंट करने का धैर्य सबकुछ तो नष्ट होता जा रहा है। समाज का हर तबका एक दूसरे को शक की नजर से देख रहा है तो नारी घर में सास–ससुर देखना ही नहीं चाहती जबकि हर मां सास बनेगी। खुलेपन की बात में जो कुछ मशवरा देता है, वह एक ही पल में स्त्रीविरोधी हो जाता है। पर ऐसा नहीं है अब भी भारतीयता जिन्दा है, पर जरूरत है हमें अपनी कलम की ताकत को पहचानने की, उसकी मारक क्षमता समझने की।

पाठकों की चौपाल

प्रिय भाई सनत कुमार जैन
सप्रेम नमस्कार
आशा है आप सानंद एवं प्रसन्न होंगे। आपके द्वारा भेजी गई बस्तर पाति की प्रतियां प्राप्त हुईं। एक प्रति अपने पास रखकर शेष प्रतियां मैंने स्थानीय वाचनालय एवं साहित्यिक संस्थानों को आपकी ओर से भेंट कर दी है। मेरी रचना को महत्व देकर आपने अपनी पत्रिका में स्थान दिया इसके लिये कोटिशः धन्यवाद। पहला अंक जो आप दे गये थे एवं दूसरा अंक जो आपने अभी भेजा दोनों को अद्योपांत पढ़ा। आपका प्रयास प्रशंसनीय है। मेरा विचार है कि प्रूफ़ रीडिंग में और सजगता तथा प्रिंटिंग में सुधार आवश्यक है। विशेषकर काव्य में यदि एक मात्रा घट–बढ़ हो जाये तो उसका धाराप्रवाह बिगड़ जाता है। इस संबंध में नवल जायसवाल भोपाल ने आपको विशेष तौर पर लिखा है। आपने उनकी समझाईश पर ध्यान दिया तथा इसके लिये उनको धन्यवाद दिया, यह निश्चित रूप से आपकी महानता है। मेरी आपके प्रति अपनत्व की भावना है, इसलिये लिख दिया, बुरा न मानना, अन्यथा न लेना। यदि आपको अच्छा लगे एवं पाठकगण पसंद करें तो समाचार देना आगामी अंक के लिये रचना प्रेषित कर दूंगा।
आपकी इच्छा के अनुरूप पत्रिका निरंतर प्रगति करे, ऐसी मंगल कामना है–
फूले–फले जहां में तेरा नख्ले आरजू
दुआ बहार की शाखों शजर को देते है।
शुभाकांक्षी **जैन करेलिवी, बालचंद जैन, कपड़ा व्यापारी, मेन रोड करेली, जिला नरसिंहपुर (म.प्र.),पिन 487221, मो–9977805981**

आदरणीय जैन जी नमस्कार
आपने बस्तर पाति के विस्तार के लिए जो सहयोग किया उसका बहुत–बहुत धन्यवाद। आपके पत्र को पत्रिका में प्रकाशित कर रहा हूं आपकी इच्छा के विपरित, क्षमायाचना। **संपादक बस्तर पाति**

आदरणीय सनत जी नमस्कार
सि.–न. अंक मिला। आभार। आवरण समेत सभी रचनाएं आदिवासी जीवन की संस्कृति, साहित्य व समस्याओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। उन्हें पूरी ईमानदारी से उजागर कर उन पर समूचा प्रकाश डालती हैं। सभी रचनाकारों को बधाई। कृपया प्रूफ पर ध्यान दें। चित्रांकन उम्दा। एतेदर्थ आपको बधाई। **अशोक 'आनन' मक्सी–465106 जिला–शाजापुर, 09977644232**

आदरणीय अशोक जी नमस्कार
बहुत–बहुत धन्यवाद। आपके सुझाव पर अवश्य कार्य किया जा रहा है।
संपादक बस्तर पाति

आदरणीय सनत जी नमस्कार
'बस्तर पाति' का पंचवर्षीय सदस्यता फार्म भरते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है। आपके अथक परिश्रम के कारण ही 'बस्तर पाति' त्रैमासिक पत्रिका अपने क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य की सीमा पार करती हुई साहित्य एवं कला की सेवा हेतु सारे देश में प्रसारित एवं प्रचारित हो रही है। सदैव तन,मन,धन से सहयोग की हामी देते हुए उज्जवल भविष्य के लिए शुभकामनाएं।
मोहम्मद जिलानी, चंद्रपुर–442401 मो.–9850362608
आदरणीय जिलानी जी नमस्कार
आपका बहुत–बहुत धन्यवाद। **संपादक बस्तर पाति**

प्रिय सनत
बस्तर पाति का अंक –2 आद्योपांत पढ़ा। आज के जीवन की व्यस्त आपाधापी के बाद भी पत्रिका के निरंतर प्रकाशन के लिए आपको साधुवाद। पत्रिका में आपने पूरे देश का समेटने का प्रयास किया है।
हिन्दी के पाठकों के अभाव की चर्चा में आपने यह महत्वपूर्ण तथ्य उजागर किया कि आज हिन्दी साहित्य एवं पत्रिकायें सामान्य पाठक की आर्थिक क्षमता से बाहर होते जा रही हैं इस अभाव की पूर्ति में 'बस्तर पाति' का महत्वपूर्ण योगदान होगा, ऐसी मेरी आशा है।
बस्तर अंचल के साहित्यकारों को अपनी पत्रिका में स्थान देकर उनका उत्साहवर्धन कर उन साहित्यकारों का मां भारती की सेवा करने का अवसर प्रदान करना एक सराहनीय प्रयास है, इस 'बस्तर पाति' के माध्यम से वे पूरे भारत से परिचित होंगे।
मोहिनी ठाकुर जी की कहानी धरोहर पढ़कर बड़ी टीस सी लगी, आज के बुढ़ापे की यादकर। प्रत्येक बेटी संवेदनशील होती है विशेषकर अपने मां–बाप के लिए।
आपकी साहित्य साधना के लिए साधुवाद। साहित्य के क्षेत्र में आपकी इस लगन का मैं कायल हूं। मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि साहित्य साधना निरंतर बढ़ती रहे और आपको उन्नति के शिखर तक पहुंचाये।
जयचंद्र जैन, जैन मंदिर रोड, जगदलपुर मो–9425266070
आदरणीय चाचाजी नमस्कार
आपके द्वारा 'बस्तर पाति' की विस्तृत प्रतिक्रिया पढ़कर एवं आपकी सद्इच्छा जानकर निश्चिय ही हमारा उत्साह बढ़ा है और अपने उद्देश्य पर पहले से कहीं अधिक अडिग हो गये हैं। आपने अपने पत्र के माध्यम से 'बस्तर पाति' उद्देश्य पर प्रकाश डाला है। आपकी उत्साही प्रतिक्रिया हमेशा मिले। धन्यवाद। **संपादक बस्तर पाति**

संपादक जी नमस्कार
आज आकाशवाणी में कार्यक्रम के दौरान कार्यक्रम प्रभारी की टेबल पर 'बस्तर पाति' देखकर बहुत अच्छा लगा–बस्तर जैसी जगह से साहित्यिक एवं वैचारिक मूल्यों की आप जो पत्रिका निकाल रहे हैं वह स्वागत योग्य है। देश से अनेक लघु पत्रिकाएं निकल रही हैं–आर्थिक अभाव में बिना विज्ञापनों से जूझते हुए ये लगातार समाज का कुछ नया देने का कार्य कर रही हैं। आज की व्यवसायिक पत्रिकाओं से अच्छे साहित्य –अच्छे विचार की आशा नहीं की जा सकती है। **डॉ.राजेन्द्र पटोरिया, आजाद चौक, सदर, नागपुर मो.–09421779906**

संपादक जी नमस्कार
बस्तर पाति का सितम्बर–दिसम्बर अंक मिला। अभी पढ़ रहा हूं। संपादकीय में आम भारतीय परिवार क स्वरूप का सही चित्र अंकित किया गया है। भौतिकता की दौड़ में पारिवारिक मूल्यों और रिश्ते नातों का ताना–बाना बिखर गया है। वर्तमान पीढ़ी का यह सोचना चाहिए कि आखिर एक दिन वे भी बुजुर्गों की श्रेणी में आयेंगे। पीढ़ियों के मध्य परस्पर तारतम्य व समन्वय बना रहे तो परिवार और समाज से तमाम विसंगतियां यूं ही दूर हो जायेंगी। पत्रिका में विभिन्न विधाओं से संबंधित रचनाओं को स्थान देकर विविधता दी गयी है। बस्तर पाति छत्तीसगढ़ और संपूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र के लिए नयी आशा की किरण बने यही मेरी कामना है।
मनीष कुमार सिंह, एफ–2, 4/273, वैशाली, गाजियाबाद, उ.प्र., पिन–201010 मो.–09868140022

संपादक की पाति

बस्तर वनाचंल को अपने में समेटे संपादक सनत जैन के अथक प्रयास, परिश्रम, कष्ट एवं श्रमसाध्य प्रतिफल के रूप में यह त्रैमासिक पत्रिका 'बस्तर पाति', सुधि पाठकों के सामने है। एक युवा व्यवसायी के अंतर का साहित्य सृजन सागर का उद्वेलित उद्याम दिगदर्शन यह पत्रिका है, जिसने बस्तर में अपना वजूद दम–खम के साथ स्थापित किया। सनत जैन ने बस्तर पाति का यह अंक एक विशिष्ट शीर्षक के साथ अपना संपादकीय शुरू किया। वे साधुवाद के पात्र हैं। आज जमाने की सबसे बड़ी ज्वलंत समस्या विकराल स्वरूप में सामने आ रही है जो भारतीय दर्शन का जीवन यह संस्कार चक्र बड़ी–बड़ी उपाधियों मानदो से विभूषित न करे परन्तु सुखमय संतुष्टि भरे जीवन के सभी सोपानों में स्थापित कर एक मानव एवं मनीषी की संज्ञा तो देता ही था। इसके प्रणेता निसंदेह हमारे बुजुर्ग होते थे, जिन्होंने जीवन को भरपूर जिया। अंतिम सांस तक शेर की तरह जिया, कर्तव्य निर्वहन नियमन में कहीं पीछे नहीं रहे परन्तु आज 'हंसिया अपनी ही तरफ से काटता है' की तर्ज पर आने वाली पीढ़ी उन्हें उपेक्षित तिरस्कृत करती जा रही है, स्वछंद निरंकुश होकर जीवन मूल्यों, मानवीय संवेदना से रहित रोबोट बनने के प्रयास में ये जीवन निष्प्राण एक कंकाल मात्र हो गया है। ऐसी ज्वलंत समस्या पर युवा संपादक ने शोधपरक बात कह डाली सरल सहज सीधे वाक्यों में, जो हर सुधि पाठक को झकझोर उसकी आत्मा को जागृत करेगा ही ऐसा लगता है। पत्रिका बस्तर पाति ने कम समय में ही नई–नई युवा प्रतिभाओं को स्थान देकर सराहनीय कार्य किया है। मुखपृष्ठ श्रीमती मोहिनी ठाकुर ने नयनाभिराम चित्रांकन से पत्रिका को आकर्षक बना दिया है। श्रीमती मोहिनी ठाकुर एवं श्री नरसिंह मोहंन्ती तो बस्तर पाति के कीर्तिस्तम्भ हैं ही। सम्पादक, प्रकाशक सभी को साधुवाद। भोपाल के श्री नवल जायसवाल जी जैसे पाठक व लेखक इस छोटे शहर की छोटी पत्रिका को परिष्करण एवं परिमार्जन से उन्नत उच्चकोटि की पत्रिका में प्रत्यावर्तित करने में सहाय हैं। साधुवाद। **बी.एन.आर.नायडू मेन रोड, जगदलपुर**

आदरणीय नायडू सर, नमस्कार

सर आप न केवल बस्तर पाति के प्रशंसक हैं बल्कि एक शुभचिंतक भी हैं। आपके द्वारा ही हम जगदलपुर वासियों को शिक्षा का उच्च स्तर प्राप्त हुआ है। आज जो कुछ भी हैं आप सभी बस्तर हाई स्कूल के शिक्षकों का आर्शीवाद है। आज भी आप अपने उत्साही वचनों से उत्साह बढ़ाने की कोशिश में ही होते है। आप जैसे शिक्षकों के होते हुए ही जगदलपुर शहर एक नामचीन शहर है। न जाने कितने ही डॉक्टर, इंजीनियर, नौकरी पेशा और व्यापारी होंगे जो हमेशा आपके आर्शीवाद को याद कर मन ही मन नमन करते होंगे। आप यूं ही उत्साहवर्धन करते रहें। आपका आर्शीवाद सदैव बना रहे। **सनत जैन, संपादक बस्तर पाति**

फोन–वार्ता

'बस्तर पाति' के आदरणीय पाठक, लेखक एवं शुभचिंतक, नमस्कार,

आप सभी का प्यार सदैव बना रहता है। अंक प्राप्ति के बाद प्रतिक्रिया संबंधी अनेक फोन, ई मेल, एसएमएस और पत्र आते हैं। यदि उन सभी को पत्रिका में स्थान दिया जाए तो आधी से ज्यादा पत्रिका उसी में ही भर जाएगी। हम इस अंक से एक नया कालम फोनवार्ता आरंभ करने का प्रयास कर रहे हैं। इस कालम में फोन पर हुई बातों का सार लिखा जाएगा। फिलहाल इस अंक में फोन करने वालों की सूची प्रकाशित कर रहे हैं।

श्री रामकुमार बेहार–
श्रीमती माधुरी राऊलकर, नागपुर
श्रीमती वंदना सहाय, नागपुर
श्रीमती कमलेश चौरसिया, नागपुर
श्रीमती किरणलता वैद्य, रायपुर
श्रीमती खादीजा खान, जगदलपुर
डॉ. आशा पाण्डेय, अमरावती
श्री कृष्ण कुमार अम्भोज
श्री बबनप्रसाद मिश्र, रायपुर
श्री देव भंडारी, कलिम्पोंग
श्री सुरेन्द्र हरडे
श्री लक्ष्मी नारायण पयोधि, भोपाल
श्री हिमांशु चौरसिया, नागपुर
श्री नारवी, दल्ली राजहरा
श्री पवन तनय हरि जौनपुर
श्री रमेश यादव, मुम्बई
श्री सुनील शर्मा रायपुर
श्री परदेशी राम वर्मा, भिलाई
श्री शिवराज प्रधान, 24 परगना
श्री सुनील शर्मा, रायपुर
श्री थानसिंह वर्मा, बीजापुर
श्री पुरषोत्तम चंद्राकर, बीजापुर
पूनम वासम, बीजापुर
डॉ. श्रीहरि वाणी,
श्रीमती विभा रश्मि भटनागर, जयपुर
डॉ. सुरेश तिवारी, तोकापाल, जगदलपुर
श्री सुरेश विश्वकर्मा, जगदलपुर
श्री दादा जोकाल, दंतेवाडा
श्री हरिहर वैष्णव, कोण्डागांव
श्री जय मरकाम, मारडूम
श्री के एल वर्मा, बचेली
श्री वी. के. वर्मा, अम्बिकापुर
श्री वीर राजा बाबू, भोपाल पटनम

ई–मेल

श्री शिवराज प्रधान
श्री पवन तनय हरि
श्री शिवेन्द्र यादव, जगदलपुर
श्री कृपाल देवांगन, जगदलपुर
श्री रेखराम साहू, जगदलपुर
श्री पीयूष कुमार द्विवेदी, चित्रकूट, उ.प्र.
श्री दिवाकर दत्त त्रिपाठी
श्री शिशिर द्विवेदी

कहानी प्रतियोगिता के बहाने

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता में आपका स्वागत है। इस नयी पत्रिका के लिए आप सबने अपनी–अपनी कहानियां भेजकर जो विश्वास पत्रिका पर दिखाया है उसके लिए आभार!

बस्तर पाति का जन्म, जैसा कि इसके अंकों में लगातार बताया गया है – वर्तमान हिन्दी–साहित्य से दूर होते पाठकों और मुख्यधारा के प्रकाशकों की इस ओर उदासीनता–इन पहलूओं को ध्यान में रखकर ही बस्तर पाति का जन्म हुआ था। अर्थात् पाठकीयता, वह भी गद्य के माध्यम से– विशेषकर कहानी विधा में अच्छे लेखन के साथ उन आम लोगों तक जाने का प्रयास जहां बड़े–छोटे प्रकाशक समूहों की न किताबें पहुंचती हैं न पत्रिकाएं! यही नहीं लेखन में परिमार्जन के साथ–साथ जहां तक संभव हो सके स्थानीय, क्षेत्रीय स्तर पर ही–इसके पाठकों का नेटवर्क तैयार करना। ये हमारा मूल उद्देश्य रहा और है। पर, बस्तर पाति के कुछ अंक निकलने के बाद हमें ये देखने को मिला कि कहानियाँ एवं अच्छे लेख का घोर अभाव हैं। हालांकि ग़जलें व कविताएं लगातार मिल रही हैं। इसी प्रक्रिया में यह विचार किया गया है कि क्यों न एक कहानी प्रतियोगिता रखी जाए। नये व पुराने, स्कूल–कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ–साथ पुराने मंजे लेखकों से भी रचनाएं प्राप्त की जाएं। जैसी आशा की नौजवानों को प्रोत्साहित करने के बाद भी उनसे जितनी रचनाएं प्राप्त होनी चाहिए थीं वह हमें नहीं मिलीं। शायद नौजवानों को संकोच है।

प्रत्येक कहानी पर पैनी दृष्टि रखी गयी है। पाठक की हैसियत से पहले बड़े चाव से पढ़ा गया है, त्वरित टिप्पणी (एक पाठक की हैसियत से) दर्ज की गयी–और बाद में पृष्ठों को उलट–पलट कर कहानी की भाषा, तकनीक, विषय इत्यादि पर गहन विचार किया गया है। तदुपरांत कहानी में रूचि रखने वालें की भी राय ली गयी है। सच तो ये है कि एक रचना, रचना ही होती है। कुछ रचनाएं प्रभावशाली होती हैं कुछ कम और कुछ ही कालजयी। ये सारा मामला भौतिक विषय नहीं, बल्कि एक रसायन बन जाता है। आपके पास मसालेदार सब्जी रखी है–अन्य चखते हैं और उसी आधार पर नमक, तेल, घी, मसाला और बनाने की प्रक्रिया इत्यादि के बारे में अपनी राय देते हैं। है न खतरनाक काम! रही बात पसंद–नापसंद की वह तो एक जबान पर चढ़ी होती है– ठीक है, बहुत अच्छी–क्या बात! पर यहां ये इतना आसान नहीं– अपनी व्यक्तिगत पसंद से, अपने पूर्वग्रहों से परे कहानियों पर तटस्थ विचार करना था। हम शत–प्रतिशत शुद्ध या तटस्थ होने का दावा नहीं करते, मगर ईमानदार कोशिश की है और अपना, बस्तर पाति के मद्देनजर किसी चयन पर कि क्यों अमुक कहानी को क्यों, किस कारण से पसंद किया गया– स्पष्टीकरण देंगे। जहां तक संभव हो, हम किसी रचना की गलतियों/कमियों पर टिप्पणी नहीं करना चाहेंगे, वैसे भी, गलतियों/कमियों को किस एंगल से देखा जाए ? शिल्प, तकनीक, भाषा, विषयवस्तु, सोद्देश्यता ?

प्रश्न पेचीदा है और रचनाकारों को आहत करने वाला हो सकता है। पर फिर भी, लेकिन, परन्तु.....बस्तर पाति के अपने लक्ष्य हैं– वह मानती है कि पाठकों या हिन्दी साहित्य में रूचि जगाने के लिए सहज व पठनीय सामग्री आम लोगों के बीच जानी चाहिए। वह भी कहानी विधा के माध्यम से! आज मुख्यधारा की बड़ी पत्रिकाएं जिस गति से तथाकथित चर्चित एजेंडे पर धड़ल्ले से कहानियां रचनाकारों से लिखवा रही हैं – छाप रही हैं– बस्तर पाति उनसे परहेज करती है। बल्कि यह उन एजेंडाबद्ध प्राणहीन रचनाओं से दूर से ही तौबा करता है। हमारे पास वैसी ही रचनाएं अधिक मात्रा में आई हैं। शायद वे लोग बस्तर पाति के शुरू के अंको को नहीं पढ़े होंगे, अथवा हमारी मंशा नहीं समझ पाए होंगे वरना वैसी रचनाएं हमें भेजी ही नहीं जाती।

फिलहाल प्रसंगवश एक स्पष्टीकरण और देना चाहूंगा। हमारे लिए प्राणहीन, सांचे में ढली रचनाएं क्या हैं ? ये पल्प फिक्शन की तरह आज चारों ओर लिखी व छापी जा रही हैं। गौर करें–

स्त्री लेखन है तो उसका काम मर्दो को गाली देना, उसका बॉस, पड़ोसी सभी उसे 'काम' की नज़र भेंट करेंगे। गृहणी है तो उसका बेटा, पति, ससुर सभी उसे 'कैद' में रखेंगे। स्त्री एक दिन अपने बच्चे को लेकर घर से निकल जाएगी और 'आजाद' हो जाएगी। और 'क्रांति' घट जाएगी। उसी तरह आम आदमी है तो पटवारी या जमादार और स्थानीय नेता द्वारा प्रताड़ित होगा। जहां जाएगा, लात खाएगा। नेता झूठ बोलेगा, माल उड़ाएगा, स्विस बैंक में खाता खोलेगा। मजदूर है तो वह आंदोलन करेगा और सिस्टम को झुकाएगा। वोट के वक्त संवेदनशील इलाके में राजनीतिक गुर्गे दंगा करवाएंगे और लोगों की लाश पर चुनाव जीतेंगे।

सच ये है कि जीवन में यथार्थ इतना एक रैखिक नहीं होता। ऐसे यथार्थ किताबी हैं– ऐसी कहानियों से सामान्य पाठक कोसों दूर हैं। सिर्फ इनके पास एक सैद्वांतिक एजेंडा हैं– कि ये 'सोद्देश्य' हैं।

दूसरी परेशानी ये है कि इस एजेंडे को जरूरत से ज्यादा तवज्जो दिए जाने– फैशन बनाकर टोपी लगाने के कारण,

लेखकों का ध्यान कहानी के कला पक्ष पर से पूरी तरह हट गया लगता है। जबकि एक आलू को दो तरीके से काटा जाए तो सब्जी के स्वाद में अंतर आ जाता है– कहानी के कला पक्ष से आधुनिक हिन्दी परिदृष्य मौन साधे है। वह एक शब्द का इस्तेमाल करता है– शिल्प–और आगे बढ़ जाता है– सिर्फ कहानी के विषय को धूनता रहता है।

उक्त दो बातें हमारे निर्णय में गहराई से शामिल हैं। इस हद तक कि हमें निर्भय कहा जाए। और इसके लिए हमारे एक भी, कोई भी लेखक, लेखिका जवाबदार नहीं हैं– वस्तुतः ये सारा दोष हमारे वर्तमान साहित्य के परिदृष्य का है, जिसमें दो लोग खासे जिम्मेदार हैं– पहले आलोचक, दूसरे संपादक! इनके सामने से मजलिस कब का उठ चला, और ये हैं कि आंख बंद किए 'राग' अलाप रहे हैं।

बस्तर पाति के अंको में कहानियों पर विशेष चर्चा होती रहेगी। यहां हम प्रतियोगिता में प्राप्त कहानियों –जिन्हें सर्वश्रेष्ठ या श्रेष्ठ की श्रेणी में रखा जा रहा है– के बारे में संक्षिप्त राय आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं–

कहानी 'लिफ्ट' लेखक श्रीमान् देवभण्डारी जी हैं जो अहिन्दी भाषी हैं– वे मूलतः नेपाली भाषा व साहित्य से जुड़े रचनाकार हैं। वे विशेषकर बधाई के पात्र हैं जो अहिन्दी भाषी होकर भी हिन्दी में लिखने का प्रयास किया, आपका बस्तर पाति की इस प्रतियोगिता में स्वागत है। पुनः आपकी इस रचना को सर्वश्रेष्ठ की श्रेणी में रखा गया है। पाठक देखेंगे आपकी कहानी सरल, सहज अंदाज में खूबसूरत दृश्यों का निर्माण करती हैं– कहानी में प्रयुक्त संवाद बड़े आत्मीय और सबसे बढ़कर बिना कुछ ऊँचे स्वर में बोले, लेखक अपनी मंशा, अपना दृष्टिकोण छुपाए बड़े मनोरंजक तरीके से कहानी का अंत होते–होते पाठकों के समक्ष सुन्दर, चौंकाने वाला और अर्थ का एक विस्तृत स्पेस खोल देता है। पाठक अचंभित रह जाता है– एक मीठा अहसास, साथ ही देश की वर्तमान स्थिति या तथाकथित प्रगति के सन्दर्भ में अद्भुत् संकेत से विडंम्बनात्मक दृश्य प्रस्तुत करता है।

कहानी या कला का कोई भी रूप हो, वह जितना बताने की विधा है, उससे अधिक छिपाने की कला/कहानी के दृश्यों में, या पात्रों के संवाद या अंतःक्रिया द्वारा–अंततः विश्वसनीय पात्र व दृश्यों की रचना से भी एक कहानी आज की मुख्यध ाारा की रचनाओं से बेहतर होगी। कोई भी लेखक सिर्फ इन दो कला तत्वों पर ध्यान दे और हां, उनके पास आमजन को बताने को कथ्य हो।

आप स्वयं कहानी पढ़कर देख लें और विचार करें। अहिन्दी भाषी होने के कारण भाषा की बुनावट में जो नयापन दिखता है – वह दृश्यों और पात्रों के साथ पाठक को सीधा जोड़ता है। भण्डारी को बहुत–बहुत बधाई!

कहानी 'खोया क्या ?' – जय मरकाम जो युवा हैं और शायद उन्होंने अभी–अभी लिखना शुरू किया है। जय मरकाम जी की कहानी हमारे पाठकों के समक्ष इसलिए प्रस्तुत हो सकी कि बस्तर पाति प्रारंभ से ही स्कूल, कॉलेजों में जाकर पत्रिकाएं बांटने, युवकों/युवतियों के पढ़ने व लिखने को प्रोत्साहित करता रहा है। कुछ गोष्ठियां भी नारायणपुर, दंतेवाड़ा जैसे धूर इलाके में की गयी हैं। उसी धूर इलाके से आश्रम में रहकर पढ़ने–पढ़ाने वाले युवाओं के बीच से हमें यह कहानी प्राप्त हुई। सर्वप्रथम तो लेखक को इस सक्रियता के लिए बधाई। थोड़ी टिप्पणी कहानी पर–

कहानी आप–बीती की शक्ल में लिखी गयी है– एक युवा होते, स्कूल से कॉलेज की ओर जाती पीढ़ी की दास्तान है। कहानी सहजबोध, बिना किसी हिचकिचाहट या शब्दों के प्रदर्शन के फेर में पड़े लिखी गयी है। कहानी के पात्र एक तरफ गरीब किसान के पुत्र है जिन्हें सालभर में मुश्किल से एक–आध दफे पैसे का दर्शन होता है– वहीं उन कृषक विद्यार्थियों का मित्र भी है जिसका ताल्लुक व्यापारी घराने से है, जो आए दिन गल्ले से कुछ उड़ा लेता है। उस चोरी के पैसे से विद्यार्थी ऐश करते हैं। धीरे–धीरे यह एब बढ़ता जाता है। वे मजे में जी–खा रहे हैं मगर जीवन का यथार्थ है कि उन्हें झकझोर देता हैं। और जब उन्हें अपनी गलतियों का अहसास होता है– तब तक बहुत कुछ खो जाता है। जीवन मूल्य उन्हें हासिल होता है मगर बहुत बड़ी कीमत चुकाकर। 'खोया क्या ?' कहानी का शीर्षक यहां सार्थक हो जाता है। यह ग्राम, शहर सभी क्षेत्र में युवकों में पैसे व ऐश–पानी के प्रति बढ़ते रूझान और बदले में मूल्यवान चीज खो जाने की कहानी है। दरअसल यह कहानी उस 'मूल्य' पर अपनी उंगली रखती है जिसके बारे में युवा पीढ़ी को अंदाजा तक नहीं। अतः कहानी अत्यंत न सिर्फ सामयिक है, बल्कि अपने कथ्य में मानवीय मूल्यों को स्पर्श भी करती है। मरकामजी ने स्थानीय शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया है– भाषा शैली में अनगढ़पन के बावजूद यहां ताजगी है। बधाई।

यह तो हुई विषय की बात। कहानी की तकनीक को लेकर लेखक चितिंत नहीं हैं, न ही वे किसी प्रचलित नुक्से की तरह यहां आजमाईश करते हैं। यहां उनका भोगा हुआ सच है और सब से बढ़कर–विश्वसनीय है। कहानी हो या फिल्म या कोई अन्य कला– यह विश्वास दिलाने की कला है। चाहे इसके लिए लेखक आप–बीती शैली का प्रयोग करे अथवा अन्य तरीके से, असल है कहानी या कला का प्रभाव! और यह प्रभाव विश्वसनीयता से आता है। पात्र निर्जीव तो नहीं, घटनाएं व

परिवेश बेजान तो नहीं। कहानी में आया मोड़ अस्वाभाविक तो नहीं! पात्रों द्वारा बोले गये संवाद बनावटी तो नहीं। कहानी में आप बीती शैली अत्यंत सहज शैली है मगर कई बार लेखकों की कुंठा या अन्य कारणों से वह सिर्फ 'जस्टीफिकेशन' का जरिया बनकर रह जाती है। आत्म–प्रसार आत्मालाप में तब्दील हो जाता है। बस्तर पाति के पाठक देखें इस कहानी में 'कहानी' किस सहजता से प्रवाहित है और बिना–ताम–झाम के समाप्त!

मरकाम जी आप बधाई के पात्र हैं– उम्मीद है आप कहानी/ साहित्य खूब पढ़ेंगे–खूब लिखेंगे, और हां, एक दिन आप इतने सक्षम हो जाएंगे कि इस कहानी को कम से कम तीन तरह से लिख सकेंगे। इस छोटी सी कहानी को लघु उपन्यास में बदल पाएंगे। शुभकामनाएं।

अन्य सर्वश्रेष्ठ कहानियों में हैं श्रीमती बकुला पारेख की 'काश...!' प्रस्तुत कहानी में मध्यमवर्गीय युवाओं में विदेशी शिक्षा, विदेशी वैभव (खुलेपन के बाद यह लगाव अमेरिका के प्रति हो गया है।) के प्रति मोह की कहानी है। इस 'मोह' में घरवाले भी घी डालते हैं। अमेरिका जाने का स्वप्न! चाहे जैसे भी हो, योग्यता या और कुछ! आज के समय का बहुत बड़ा भ्रम कि कुछ करना है तो अपनी जमीन छोड़ दो। लेखिका 'मैं' की शैली में कहानी आगे बढ़ाती हैं– विदेशी सपनों को सच करने के रास्ते आयी पेचीदगियों का सार्थक समावेश करती हैं और अंत मोहभंग से होता हैं। पर यहां भी मोहभंग तब होता है जब जीवन की सबसे बड़ी कीमत चुकाने की बात सामने आती है।

दरअसल यह पूरी कथा अमेरिका में पढ़ने, बसने के सपने को लेकर है, मगर यह कहानी उसकी वकालत नहीं करती, बल्कि विदेशी सपनों के पीछे का कड़वा यथार्थ प्रस्तुत करती है–जैसे महाभारत युद्ध की कथा होकर भी सिर्फ अहिंसा और सामंजस्य की ओर संकेत करता है– ठीक वैसी ही कथा टेकनीक लेखिका ने अपनी कहानी 'काश....!' में किया हैं। यह विदेश में सपने सच्चे करने की कहानी न होकर उसके प्रति लोगों को, खासकर युवा पीढ़ी को विदेशी सपने के प्रति सावधान करने की कहानी है।

कहानी 'मैं' की शैली में है मगर उसके 'मैं' का प्रसार अपने 'बेटे' के सपने पर केंद्रित है। वह बेटे के सच को जानती है। उसका संवाद अपने पति से यदा–कदा होता है– वे सब उस सपने में हिस्सेदार हैं। कुछ पड़ोसी भी हैं जो अन्तःक्रिया कर कहानी आगे बढ़ाते हैं। भाषा शैली सरल व सहज है। लेखिका ने कहानी के प्रारंभ में ही सुन्दर वातावरण का निर्माण किया है व अपनी रचनात्मक शब्द–शक्ति का परिचय दिया है। कहानी का प्रारंभ अत्यंत महत्वपूर्ण होता हैं, यह कहानी इस ओर उल्लेखनीय है।

कहानी के अंत को रेखांकित करना चाहूंगा। लेखिका मोहभंग की स्थिति होने पर यह नहीं प्रतिक्रिया व्यक्त करती (पात्र के रूप में) कि यह स्वप्न ही दुश्वार था, यह बेकार था, बल्कि एक बीमारी (एड्स) के बारे में कि पहले पता होता तो डॉक्टर से टेस्ट करा लेते! और यही 'काश...!' बन जाता है। सटीक शीर्षक!

इस गंभीर बीमारी के लिए 'काश.....!' शब्द पर कहानी खत्म करना असल में उस मोह की तरफ इशारा करता है– वह मोह और कुछ नहीं बस एच0आई0वी0 पॉजिटीव है, लाइलाज! इस तरह कहानी संकेतों से बहुत कुछ स्पष्ट करती है। विदेशी मोह एड्स की तरह प्रतीत होता है–कहानी सामाजिक समस्या को उठाती है। आर्थिक उदारीकरण के बाद विदेशी मोह बढ़ता ही जा रहा है। कहानी का प्रवाह अंत तक सहज है। बधाई!

कुमार शर्मा 'अनिल' की कहानी 'पुरस्कार'–यहां लेखक पति और पत्नी जो एक साधारण गृहणी है, के बीच लेखक की प्रेयसी/प्रेरणा के रूप में आयी 'दूसरी' की कहानी है। लेखक घर–बाहर के तनाव को न झेल पाने के कारण आत्महत्या कर लेता है। दुनिया और लेखक की वैधानिक पत्नी, सभी उस 'दूसरी' को इसका जिम्मेदार मानते हैं। कहानी का प्रारंभ साहित्यिक पुरस्कार समारोह के दृश्य से शुरू होता है जहां मरणोपरांत वह साधारण गृहणी अपने पति की ओर से पुरस्कार लेने आती है। गृहणी के मन में बवाल उठ रहे हैं, वह 'दूसरी' आकर बैठ जाती है और कथा के शीर्ष के पूर्व अपना मत प्रकट करती है। दरअसल यह मत/विचार उस प्रत्येक 'दूसरी' या 'दूसरियों' की मनोदशा को जस्टीफाई करती है–इस एंगल से एक नयी दृष्टि पैदा होती है और पाठकों के साथ–साथ कहानी के मुख्य पात्र की सोच में भी यू–टर्न आता है। और जो 'पुरस्कार' का शीर्षक है वह नाटकीय ढंग से यहां बदल जाता है। क्लाइमेक्स में एंटी–क्लाइमेक्स सा घटता है। और एक नयी संवेदना उद्घाटित होती है। लेखक ने कहानी में 'फ्लैश–बैक' टेकनीक का सटीक प्रयोग किया है, कहानी पाठकों को अपने साथ बहा ले जाने में सक्षम है। भाषा शैली सघन व रियलास्टिक है–पात्रों के मनःस्थिति की रचना वास्तविक सी लगने वाले दृश्यों और संकेतों में की गई है।

कहानी एक सवाल उठाती है कि प्रेम यदि सहज व स्वतंत्र है, उम्र या स्थिति का बंधन नहीं, अर्थात प्रेम जो उन्मुक्त

करता है–फिर प्रेमी या प्रेमिका के प्रति समाज इतना जजमेंटल क्यों हो जाता है ? खासकर स्त्री प्रेमिका के लिए–घरतोडू या कुलटा, इत्यादि शब्दों से विभूषित करनेवाला समाज! शायद प्रेम जैसे विषय में उठने वाले सवालों के लिए न सिर्फ भारतीय समाज बल्कि विश्व समाज भी अभी बौद्विक या भावात्मक स्तर पर तैयार नहीं हो पाया है। लेखक इस साहसी प्रयास, सच–बयानी के लिए बधाई के पात्र हैं। पाठक देखेंगे कि कहानी 'पुरस्कार' का शीर्षक किन मायनों में अचानक पलट जाता है और संवेदना का एक नया कोण हमारे समक्ष बड़े नाटकीय ढंग से पेश करता है।

प्रसंगवश कहना चाहूंगा कि हमारे पारंपरिक मिथक व लोककथाओं में नाटकीयता के भरपूर तत्व होते हैं जो कहानी में मोड़ तो लाते ही थे, नया अर्थ भी पैदा करते थे और कहानी रोचक! लेखक ने इस तत्व का आधुनिक लेखन में कहानी में सुन्दर प्रयोग किया है। बस्तर पाति सदैव अपनी परंपरा में लुप्त हो रही चीजों के प्रति सावधान है। हां, वे परंपरायें हमारे आधुनिक संदर्भ में साधक हों बाधक नहीं। लेखक को बधाई!

माला वर्मा की कहानी 'पीर पर्वत सी पिघलने लगी' स्त्री मनोविज्ञान की कथा है। कहानी भावनाओं में बहती हुई प्रवाहित होती है। मां–बेटा, पति और नई बहु के बीच (पति का रिश्ता तटस्थ है– कहानी के अंत में संयोजक की भूमिका में) जटिल संबंधों की कहानी। कहानी भारतीय मध्यमवर्गीय परिवार की घर–घर की समस्या है– बिना किसी एजेंडे के एक स्वाभाविक कहानी। स्त्री मन की जटिल गांठ को खोलने का प्रयास । इसे प्रचलित तरीके से सहज शैली में लिखा गया है।

आज टीवी सीरियलों में एकता कपूर' ब्रांड पात्रों के बीच प्रस्तुत कहानी स्त्री मन को अवश्य ठंडक पहुंचायेगी। मन की जटिलता को हल्का करने का सुन्दर तरीका है तथ्य या सत्य से सामना किया जाय। बेटे की मां जो नई बहू के आने को लेकर अत्यंत संवेदनशील और रिएक्टीव हो गयी है–अंधकार में जीने को विवश है। मन के गहन अंधेरे में वह तिरस्कृत व कुंठित होती रहती है। इन सबका कारण मन की सत्यता, मन के छलावे को न समझ पाना है। कहानी इसी बिन्दु पर उंगली रखती है–विषय नया नहीं अपितु चिरपरिचित घरेलु है–बिना शोर–शराबे के सामायिक। स्त्री विमर्श की बड़ी बातों से लाखों मिल दूर और प्रभावशाली।

लेखिका को बधाई। कहानी में शीर्षक 'पीर (दर्द) पर्वत सी पिघलने लगी'– 'पीर' और 'पर्वत' में अर्थात दर्द का पर्वत सा बताने का मानो प्रयास है– जो कहानी के अंत में 'पिघलने' पर राहतदेती है। शीर्षक में 'पीर' और 'पर्वत' शब्द बड़ी दूरी का अहसास कराते हैं मगर कहानी है अपने घर की। बड़ी करीब!

कहानी में बेटे की भूमका कुछ ज्यादा अस्वाभाविक गढ़ा गया है–शादी के पूर्व तक जवान बेटा मां के साथ सोने का आदी है। (बचपन की आदत गई नहीं।) संभवतः इस अतिशय व्यवहार के बिना भी कहानी उद्देश्य की कतई क्षति नहीं होती –ऐसा बस्तर पाति के सदस्यों का मानना है। पाठक विचार करेंगे। प्रसंगवश कहना चाहूंगा कि कहानी दो तरह की हो सकती है–एक जहां साधारण में से असाधारण बात निकले–पाठक कथा के अंत में कहे कि अरे! हमने तो ऐसा सोचा ही नहीं, दूसरे कहानी स्वयं ही असाधारण घटना या प्रसंग या दृश्य लिए हो। जैसे कोई अंतरिक्ष यात्री मंगल ग्रह पर गया और उसे वहां के लोग मिले, बस्ती मिली। वह पृथ्वी आकर लोगों को बताता है। उसकी प्रत्येक बात, विवरण, दृश्य कहानी बन जायेगी। कौतुक!

पर व्यवहार में असाधारण घटनाएं या व्यवहार या मनोविज्ञान की तलाश आसान होती है ? दूसरे वह 'असाधारणता' किस पहलू को लिए है–घटना स्तर पर या मनोजगत पर या दृश्य या और कुछ ?

सार ये कि सिर्फ असाधारण घटनाएं या मनोजगत उठाने से ही कहानी असाधारण होगी, कतई ऐसा नहीं होगा। कहानी के कहानी होने क अपने नियम हैं।

फिलहाल प्रस्तुत कहानी में बेटे की आदत को (जो कि सामान्य नहीं हैं।) को मां के द्वन्द दृश्य में 'कन्ट्रास्ट करते है।–गहरी लकीर खींच कर। इस कन्ट्रास्ट की कितनी जरूरत थी सुधि पाठक विचार करें। कहानी में कहीं–कहीं अति भावुकता का समावेश है।

'प्रेम के रंग'– मनजीत शर्मा 'मीरा' द्वारा रचित है। आपने लोक/मिथक कथा तत्व का प्रयोग किया है। बस्तर पाति लोककथा, मिथक या पौराणिक कथा तत्वों का प्रयोग आधुनिक कहानियों के सन्दर्भ में हो– को बढ़ावा देता है। कुछ लोग भ्रम–वश सीधे लोककथा भेज देते हैं– जबकि हमारा आशय है लोककथा टेकनीक का प्रयोग! इस पर बस्तर पाति विमर्श आगे करती रहेगी।

प्रस्तुत कहानी में प्रेम जैसे जटिल विषय को फिर से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है और लेखिका इसमें सफल हैं। आज के सन्दर्भ में युवक–युवतियां जहां स्वांग/दिखावे को ही प्रेम मानते और समझते हैं वहां प्रेम बिना आहट

के, मौन भाव में किस तरह आकर्षित करता है–प्रस्तुत कहानी बखूबी वर्णन (दृश्यों में) करती है।

बधाई!

अब कुछ उन कहानियों के सन्दर्भ में जिन्हें यहां किसी श्रेणी में नहीं रखा गया है। कुछ तो मंझे हुए परिपक्व लेखक थे मगर सांचे में ढली (एजेंडाबद्व) रचनाएं भेजी। रचना सोद्देश्य हो कथा में मानवीय सरोकार हों हीं मगर उसका प्रस्तुतिकरण हमारे लिए अहम है। साम्यवादी क्रांति के बाद ऐसी रचनाएं थोक में लिखी गयीं, खूबसूरत, फैशनेबल नाम दे–देकर। आज इन्हीं के तर्ज पर अस्तित्ववादी लेखन चल पड़ा है– स्त्री, दलित, पुरूष विमर्श इत्यादि। कितना अजीब है– किसी भी समस्या को फैशन के तौर देखा और लिखा जा रहा है। नये हिन्दी पाठकों को लगता है– यही हिन्दी साहित्य है। यहां प्रबुद्धजनों, विचारकों, लेखकों को थोड़ा ठहरकर विचार करने की जरूरत है। हमारी अपनी स्पष्ट सोच है– मानवीय संवेदना सर्वोपरी और किसी रंग के झंडे की तीमारदारी नहीं। आपने देखा हैं माला वर्मा की कहानी 'परिवार' तोड़ती नहीं, टूटने से बचाती है। भारतीय परिवार विश्व भर में अनूठा है। इस परिवार के विषय में कोई यूरोपीय या कोई भारतीय जो यूरोपीयन/ अमेरिकन चश्मा लगाए हुए है, वह क्या देख पाएगा ? ठीक वैसे ही हम अपने चश्मे से पश्चिमी व्यक्तिवाद को कितना समझ पाएंगे। साफ है– हम किसी फैशन के तहत 'चीजों' को नहीं देखना चाहते, रचना को रचना रहने दे और हां, मानवीय संवेदना, पर्यावरण, युवा वर्ग को सही दृष्टि से देखें, यही हमारी प्राथमिकता है।

इस प्रतियोगिता के बहाने एक सवाल नये–पुराने सभी रचनाकारों से कहना चाहूंगा कि वे हिन्दी साहित्य का भविष्य कुछ बेहतर हो– इसके लिए कभी कुछ तो सोचा होगा। हमारी सोच तो ये है कि सोलह वर्ष से लेकर चौबीस–तीस वर्षीय युवा–वर्ग को केंद्रित कर रचनाएं लिखी जाएं। हम इन्हें प्राथमिकता दें, उनकी सुनें, उनसे लिखवाएं व उनके अनुरूप विशेषकर वरिष्ठ साहित्यकार रचनारत हों। युवाओं को जोड़ना ही होगा– उन युवाओं को जो इंटरनेट, टीवी, मोबाइल, एक बाइक, एक वाईफ (शादी से पहले वाली अर्थात् गर्लफ्रेंड) और अमेरिका के सपने देखता है। काम आसान नहीं है। बस्तर पाति में ऐसी रचनाओं का स्वागत है। आप ऐसे पात्रों–परिवेश की रचना करें– रचना में स्वतः ताजगी आएगी, मगर क्या कहते हैं– यह जो प्याली चाय से पूरी तरह भरी हुई है– कुछ खाली हो तो नई बात के लिए जगह बने। इति।

लघुकथायें

अपरहण

विचित्र घटनाक्रम हुआ। पोते का स्कूल बस तक छोड़ने गये दादाजी ने जैसे–तैसे पोते को तो बचा लिया किन्तु भागते चोर की लंगोटी सही के अनुरूप अपरहणकर्ताओं ने स्वयं दादाजी को दबोच लिया।

बदहवास पोते ने जैसे–तैसे घटना की खबर घर आ कर सुनाई। इस बीच एक करोड़ रूपये की फिरौती की मांग भी फोन पर आ गई। दादाजी के जमाए करोड़ों के कारोबार के कर्ता–धर्ता तीनों बेटों में विचार विमर्श हुआ। और अपरहणकर्ताओं से फिरौती की राशि पर मोलभाव शुरू हुआ। मांग एक करोड़ से पांच लाख तक आते–आते पांच दिन निकल गय। इस बीच उच्च रक्तचाप और तीव्र मधुमेह के पुराने रोगी पिच्चयासी वर्षीय दादाजी की हालत बिना नियमित दवाई के निरन्तर बिगड़ती गई।

बेटे पांच लाख देने को राजी नहीं हुए। दादाजी की चिन्ता जनक हालत से घबराकर (या संभव है!) द्रवित हो कर अपरहणकर्ता बिना कोई फिरौती लिए रात को किसी समय उन्हें बंगले के बाहर डाल गये।

एक ही बात

आशंका तो महीनों से भी। आज सिद्व हो गई। बहु बेटा हम पति–पत्नी को वृद्वाश्रम में छोड़ने ले आए। मैं तो कुछ नहीं बोला शायद पुरूषोचित अपेक्षा के कारण, पत्नी नहीं रह पाई। भीगी आंखों, रूधे गले से पूछ ही बैठी– 'जीवन भर की हमारी तपस्या का क्या यही ईनाम है ?'

बेटे ने तटस्थ भाव से जवाब दिया–'मम्मी, आप ने मेरे बचपन में मुझे क्रेश में रखा या हास्टल में। मैं आपके बुढ़ापे में आपको वृद्वाश्रम में रख रहा हूं, बात तो एक ही है! फिर शिकायत किस बात की ?'

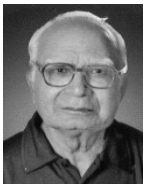

ओमप्रकाश बजाज
विजय विला,
166–कालिंदी कुंज,
पिपलहाना, रिंग ाड,
इंदौर–452018 म.प्र.
फोन–09826496975

हिन्दी में छुआछूत

प्रस्तुत अंक कहानी केन्द्रित है। वैसे बस्तर पाति के अंकों में कहानियों पर खुली बहस जारी है। इस अंक में बस्तर पाति कहानी प्रतियोगता में प्राप्त रचनाओं को स्थान दिया जा रहा है, परन्तु कहानी प्रतियोगिता में प्राप्त सभी कहानियां (एकाध ा अपवाद छोड़ दें।) चिर–परिचित अंदाज में, अपनी प्रचलित शैली में लिखी हमें मिली। यह आश्चर्य नहीं! कारण साफ है– हमारे चारों ओर मुख्यधारा की पत्रिकाएं 'साहित्यिक' होने के नाम पर किस तरह 'खांचे' में बंधी हैं–यह हम सब जानते हैं। हिन्दी का लेखक चाहते हुए भी इन एजेण्डाबद्ध सोद्देश्यता से परे नहीं जा पाता और हिन्दी का आम पाठक समझता है कि हिन्दी साहित्य बहुत 'ऊंची' चीज है, उसकी पहुंच या उसकी समझ वहां तक नहीं। अतः हमारा पहला फर्ज यही बनता है कि लेखक, संपादक, प्रकाशक ऐसा क्या लिखें, क्या छापें कि आम पाठक अपना जीवन, अपना चेहरा हमारी रचनाओं में देख सके। हिन्दी संपादक, लेखक, प्रकाशक के पास ऐसा कोई विचार नहीं कि वह इस महत्ता को समझे कि चार से आठ साल तक के बच्चे, दस से चौदह साल के बच्चों और पंद्रह से पच्चीस–छब्बीस वर्षीय युवा होते पाठकों के लिए क्या और कैसा लिखा–छापा जाये। हमारे साहित्यिक संत यही समझते हैं कि एक बीस वर्षीय युवा सीधे उनके बहुतायत में छापे गये सोद्देश्य, विखण्डन छाप, उत्तर आधुनिक रचना आत्मसात कर ले। विमर्श करे और आगे चलकर वैसा ही लिखे। क्या ये ज्यादती नहीं है ?

हिन्दी के तथाकथित विद्वान संपादक और रचनाकार जो एक्सपोर्ट क्वालिटी की रचना करते हैं–अपने कच्चे माल अमेरिका या लेटिन अमेरिकी देशों से आयात करते हैं इन्होंने कभी भी किसी बाल साहित्य लेखक या बाल पत्रिका के संपादक को अपने करीब बिठाया है। ये तो प्रौढ़ साहित्य की रचना करते हैं–इतने प्रौढ़ कि पढ़नेवाला ही थूकने–खंखारने लग जाता है। उसी तर्ज पर ये हिन्दी में लुगदी साहित्य लिखने वालों, जासूसी और रोमांच कथा लिखने वालों को ये लेखक ही नहीं मानते। जबकि आज भी इनके हजारों पाठक हैं। वे हिन्दी में पढ़ते हैं। चलिए लुगदी साहित्यकारों की बात किनारे कर लें, हिन्दी में ऐसे भी कुछ रचनाकार हुए हैं जिनकी किताबें आज भी खरीदी व पढ़ी जाती हैं–जैसे आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, कुशवाहकांत आदि। ये सभी लोकप्रिय कथाकार हैं जिनकी रचनाएं हिन्दी की मुख्यधारा साहित्य में शामिल नहीं। स्वामी विवेकानंद का युग हमें याद आता है जब हिन्दू धर्म रसोई की चीज बन गया था–हमें मत छूओ, हम मैले हो जायेंगे। आज हिन्दी मुख्यधारा का साहित्य रसोई की वस्तु बन गया है–आप उन्हें छू नहीं सकते।

अमेरिका और यूरोप से कच्चा माल आयात कर माल बनाने वालों को पता नहीं कि वहां जासूसी उपन्यासकारों, सेक्स कथाकारों को मुख्यधारा में न केवल शामिल किया जाता है बल्कि माने हुए विद्वान इनकी रचनाओं में कहानी के प्लॉट, वातावरण, गुत्थी सुलझाने हेतु तर्क शक्ति का प्रयोग तथा कथा लेखन की शक्ति इत्यादि पहलूओं पर वहां गौर भी किया जाता है। सोद्देश्य लिखने वालों और लोकप्रिय लेखन में हमारे यहां जैसा कठोर 'खांचा' नहीं बना है, न ही वहां छुआछूत की बीमारी है। इन आयातकों ने उक्त अच्छी बातों को अपने यहां लाने में कैसे चूक गये ? क्या सिर्फ इसलिए कि इनका मठ कहीं हिल न जाये। फिर इनके वर्चस्व का क्या होगा ?

भेदभाव शायद हमारे जीन में ही है–हमारे यहां के पर्दे के कलाकार कितने ऊंचे हैं, हम सभी जानते हैं, जबकि वहां टी.वी. कलाकारों और पर्दे के कलाकारों, उत्पादकों, डायरेक्टरों में आवाजाही लगी रहती है। पश्चिम के बहुत सारे लेखक जो गंभीर साहित्य लिखते हैं–लोकप्रिय साहित्य भी लिखते हैं जिनमें युवा पीढ़ी की समस्याओं यथा प्रेम व सेक्स को अपना विषय बनाया है।

जरा गौर करें–क्या आठ साल तक के बच्चे, सोलह साल तक के नौजवान, छब्बीस–तीस वर्षीय युवा और साठ–साला प्रौढ़ के लिए एक ही किस्म का साहित्य होगा ? बिल्कुल नहीं। तो फिर ये हमारे प्रौढ़ साहित्यकार (एजेण्डा लिखनेवाले, झण्डा ढोंकनेवाले) इस बात को क्यों नहीं समझते–अगर आप युवा या बाल लेखन नहीं कर सकते तो कम से कम इन युवा व बाल लेखकों, संपादकों को अपने करीब तो बैठा ही सकते हैं। मगर नहीं–आप इतने शुद्ध है कि मजाल जा कोई आपको 'छू' ले! भाईजान! वह जो आठ–बारह साल का बच्चा है, उसे पढ़ने की आदत लगेगी तो वही अठारह वर्ष का होते–होते रोमांच, रहस्य की कहानियां पढ़ेगा (आपकी सोद्देश्यता का ढोल नहीं बजाएगा) वही छब्बीस–तीस का होते–होते थोड़े गंभीर सवालों से जूझने की कोशिश करेगा। और अंततः वह हमारा शुद्ध साहित्यिक रसिक होगा। यह तो विकास है। क्या साहित्य की मंझा हुआ पाठक आसमान से टपकता है ? फिर छुआछूत क्यों.....?

हमारे देश में भाषा का लेकर (हिन्दी बनाम अंग्रेजी) बहुत दूरियां हैं–हिन्दी बोलनेवाली पट्टी ही अंग्रेजी की ओर जा चुकी है, और हिन्दी बैकफुट पर –फिर भी हिन्दी रचना पूरी तरह अपने युवा पीढ़ी से कटी है, इसमें संदेह नहीं। हायर स्कल

और कालेज और जॉब सीकिंग युवा अंग्रेजी फिक्शन लाखों में पढ़ रहा है। हमने अपनी हार मान ली क्योंकि हम 'रसोईघर' से बाहर निकलना ही नहीं चाहते। हम कहते हं हमारे पास ही 'साहित्य बचा है। बधाई!

क्या हिन्दी प्रकाशन जगत, लेखक युवा पीढ़ी से सीधे नहीं जुड़ें, उनकी समस्या उनकी जुबान में रचनाएं लाएं ? पहली कोशिश तो हमें ही करनी होगी।

और आग्रह मुख्यधारा के सार्हित्यकारों से–आप एक बार गौर करें–क्या भगवती चरण वर्मा कृत 'चित्रलेखा' में आपको प्रगतिशील तत्व नहीं दिखाई देते, आचार्य चतुरसेन शास्त्री के बहुतेरे उपन्यासों में हमारा इतिहास सजीव नहीं हो उठा है ? के. कांत के उपन्यासों में उनकी शब्द–शक्ति, शक्तिशाली फेंटेसी और वातावरण क्या पाठकों (विशेषकर युवा–पीढ़ी) को डूबा नहीं लेता ? क्या ये गुण असाहित्यिक हैं ? इनमें कोई लाल या पीला झण्डा नहीं फहराया गया है...?

हम ऐतिहासिक भूल को जितनी जल्दी सुधार सकें तो अपनी भाषा व साहित्य, दोनों का भला हो।

दलित और शोषण–शोषण का नारा लगाते मुख्यधारा साहित्य स्वयं दलित व शोषित व हाशिए पर चला गया है। आज का युवा वैसे भी इंटरनेट में डूबा है–क्या आप उन्हें खींचकर लाना चाहेंगे ? और कैसे ?

लेखकों से

कथा टेकनीक के लिए हमने लोक–कथाओं, अपनी परम्परा से चीजें उठाने अथवा प्रेरित होने की बात हम लगातार करते आयें हैं; हमारे बहुत से पाठक व लेखक भ्रमवश सीधे–सीधे प्रकाशन हेतु लोककथा ही भेज देते हैं। जबकि हमारा आशय होता है कथा टेकनीक के लिए अपनी पतम्परा पर बारीक नजर रखी जाए और वहां से प्रेरणा लेकर आधुनिक कथाएं लिखी जाएं। हमारी लोककथाओं, मिथक और पौराणिक कथाओं में बहुत अच्छे–अच्छे बिम्ब, जादुई यथार्थ, रहस्य व रोमांच हेतु शानदार तकनीक का प्रयोग, नाटकीयता इत्यादि गुण भरे पड़े हैं। ऊपर हमने आचार्य चतुरसेन या कुशवाहाकांत का नाम इसलिए लिया है कि पाठक व नये (पुराने भी ?) रचनाकार सीखें कि गल्प है क्या ? पाठकों को इन लेखकों के उपन्यास में दस–पांच पृष्ठ में ही गहरे उतरने का अहसास होने लगता है। यह किसी भी गल्प की ताकत है। कहानी की –जो ताकत है–अर्थात कथा जानने के लिए पाठक पृष्ठ पलटता जाता है, पुस्तक छोड़ नहीं पाता, उस मूल ताकत का हमने अपने साहित्य से 'विखण्डित' कर दिया है हिन्दी में लिखनेवाले युवा रचनाकारों को परेशान होने की बात नहीं, मुख्यधारा के प्रकाशकों, संपादकों की परवाह किए बिना वे नया लिख सकते हैं, सामर्थ्यनुसार अपनी पुस्तक छपवा सकते हैं और नेटवर्किंग के माध्यम से लोगों, स्कूल, कॉलेज तक पहुंचा सकते हैं। आपने अच्छा लिखा है, आपको खुद पर विश्वास है तो आज डिजीटल युग में यह असंभव नहीं। टेकनालॉजी ने हमें चारो ओर से बांध रखा है पर कई ऐसे रास्ते हैं जहां स्वतंत्र बयार का आनंद आप ले सकते हैं। मगर हां आपको व हमें अभी खूब होमवर्क करने हैं। लगातार कोशिश करनी है। हमें पता है यह कठिन है, वैसे भी रास्ता आसान होता तो हम वहीं चल रहे होते, यहां आपके साथ 'रास्ते की तालाश नहीं कर रहे होते।

एक और बात! आज की कोई भी कथा किसी भी पत्र–पत्रिका की उठाकर देख लें–स्पष्ट हो जाएगा कि लेखक ने सामाजिक मुद्दा अपनी डायरी में नोट किया है और कुछ पात्रों के मार्फत रचना बुनने बैठ गया है। एक बार और....और हो सके तो बार–बार यह कहना समीचिन होगा कि सामाजिक मुद्दे से किसी को क्या परेशानी..? मुद्दा है तरीके पर! एक ढर्रेनुमा लीक पर चलने की परेशानी! अतः मुद्दा नहीं, जीवन उठाईए, जीवन से पात्र खुद–ब–खुद बाहर आ जाएंगे, पात्र घात–प्रतिघात से स्वयं ही अपने जीवंत होने का प्रमाण देंगे। और अंत में, आप थोड़ा टेकनीक, कथा तत्व, रोमांच–आगे क्या हुआ ? का बोध ा अपने पाठकों का कराते रहें–एक सफल, पठनीय रचना आप लिख सकेंगे।

बस्तर पाति के संपादक मण्डल ने महसूस किया है कि बहुतेरे रचनाकार बड़ी अच्छी रचनाएं लिख सकते हैं–बस थोड़ा सावधान, कठोर संपादन, सतर्कता जरूरी है। और सब से बढ़कर, आप हमारी सोच से इत्तेफाक रखते हों। चिंतन व विचार करने को तैयार हैं। तथ्यों को पकड़ना चाहते हैं और झूठी 'चर्चा' स दूर आम पाठकों के करीब जाना चाहते हैं। एक सवाल आप स्वयं से पूछे–क्या आप अपनी रचनाओं के लिए किसी 'चर्चित' (?) आलोचक या संपादक की घिसी–पिटी, शब्दों के आडम्बर से भरी टिप्पणी पसंद करना चाहेंगे या पच्चीस–पचास आम कहे जाने वाले पाठक, जो आपकी रचना पर विशेष टिप्पणी तो नहीं कर सकते, मगर बड़े चाव से पढ़ते हैं।

आप क्या पसंद करेंगे ?

मुद्दा बनाम जीवन

ऊपर सामाजिक मुद्दा और जीवन का रेखांकित किया गया है। हमारे समझदार पाठक हमारा आशय समझ गये होंगे। थोड़े विस्तार में–

इसमें कोई दो राय नहीं कि लेखक लिखने के पहले ही अपनी सोद्देश्यता, कथ्य इत्यादि तय कर लेता है। और यहीं सत्यानाश हो जाता है। उसका मस्तिष्क एक फिक्सड प्रोग्राम जैसा संचालित होने लगता है और कथा का निर्वाह एक पैटर्न में समाप्त हो जाता है। मुद्दा तय करना गलत नहीं है, गलत है उस मुद्दे को जीवन से न जोड़ पाने की असफलता! इसे इस तरह भी समझा जा सकता है कि हमने अपने आस–पास से सीधे 'जीवन' या 'घटना' या 'कहानी' उठा ली! लिख दिया! लिखने के बाद लगे कि अरे इसमें वैसा कुछ 'सोशल मैसेज' गया ही नहीं, अव्वल तो यह आपकी भूल होगी, जरूरी नहीं कि कथा या जीवन में सबकुछ बहुत 'लाउड' हो, ऊंची आवाज में चीखता हुआ। वैसे भारतीयों को चीखना–चिल्लाना बहुत पसंद है। कम की जगह खूब बातें करना जहां संकेतों से काम चल जाए वहां प्रवचन देना। खैर, इसे उदाहरण से समझे–

एक कुंवारी लड़की। एक शादीशुदा दो बच्चों के बाप जो उसका प्राध्यापक है– के प्रेम में फंसी। एक दिन भाग गयी प्रोफेसर के साथ। समाज में तूफान आ गया।

बस, कथा इतनी है। आपने लिखना चाहा है। आपके पास स्त्री विमर्श है। वैधानिक सवाल है। समाज का नजरिया है। व्यक्ति बनाम समाज का मुद्दा है। प्रगति बनाम एंटी–प्रगति का कांसेप्ट हैं कच्ची सामग्री सम्पन्न है–आप कैसे और कितना चाहेंगे ? किस पक्ष में ? किस नजरिये से...? सम्मान के नजरिये से, स्त्री विमर्श के चश्में से, प्रगतिशील तत्वों के दर्पण में झांकने का प्रयास करेंगे, या निजी बनाम सार्वजनिक जीवन के मुद्दे से...?

आप लेखक हैं। रचयिता। अब आपने इनके जीवन को जीवंत तरीके से उठाकर लिख दिया। कथा टेकनीक ऐसी इस्तेमाल की मानों इनका जीवन हमारे समक्ष सजीव हो गया। इसमें सबका दृष्टिकोण है–समाज, परिवार, उस कुंवारी लड़की, प्रोफेसर, प्रोफेसर का परिवार.....सभी का। आपने कुशलतापूर्वक आधा अफसाना, आधी हकीकत के तर्ज पर सबकुछ दिखा दिया। अपना आग्रह (अपना झुकाव) किसी एजेण्डा, किसी सोद्देश्यता के चश्में में नहीं घुसाया। आप तटस्थ रहे। पाठक स्वयं विचार कर लेगा। ऐसा आपने सोचा व लिखा। अर्थात कहानी में आपने सीधे 'जीवन' उटाया 'मुद्दा' नहीं। फिर भी....तमाम मुद्दे तो आ ही गये न...? फर्क सिर्फ इतना कि आपने किसी भी विचार या परम्परा की वकालत नहीं की। चीखा–चिल्लाया नहीं।

हर अच्छी कला में रचयिता स्वयं को पूर्णतः छुपाता है।

क्या आप अपनी अब–तक की लिखी व प्रकाशित रचनाओं का इस एंगल से देखना चाहेंगे ?

नसीम आलम 'नारवी' की ग़ज़लें

ग़ज़ल–8

निगाहें–मस्त की थोड़ी इनायत और हो जाती।
तो मुझ रिन्दे–ख़राबाती की हालत और हो जाती।
ख़फा थे रिन्द अगर मय की मज़म्मत और हो जाती,
जनाबे–शैख़ की महफ़िल में दुर्गत और हो जाती।
ज़रा सी इक झलक थी जिससे मूसा हो गये बेख़ुद,
अगर पूरी नकाब़ उठती तो नौबत और हो जाती।
जहां सौ ख़ूबियां दी थीं ख़ुदा ने हुस्न वालों को,
वहां हुस्ने वफ़ा की एक आदत और हो जाती।
हुआ अच्छा मिली तौबा की मोहलत आज रिन्दों को,
जो ऐसे में घटा उठती तो नीयत और हो जाती।
अगर बढ़ता हमारे इश्क का चर्चा जमाने में,
तुम्हारे हुस्न की दुनिया में शोहरत और हो जाती।
मेरे पज़ मुर्दा चेहरे से परेशानी हुई उनको,
अगर वो हाल–दिल सुनते तो हालत और हो जाती।
ख़िजा के दम से कायम है बहारों में कशिश वरना,
'नसीम' इस गुलशने–हस्ती की सूरत और हो जाती।।

ग़ज़ल–9

वह जाने इन्तेज़ार नहीं जलवागर किधर।
हैरां है शौक़े दीद उठाये नजर किधर।।
पहली नज़र का तीर लगा था यहीं कहीं,
अब है तमाम दर्द बतायें जिगर किधर।।
महफ़िल में इक हुजूम उन्हें देखता रहा,
हम देखते रहे कि है उनकी नज़र किधर।।
तीरे नज़र तो आज भी हैं उनके मुस्तइद,
क्या जाने खो गया है दिले–ख़स्ता पर किधर।।
दैरो–हरम की धुन में छुटा आस्ताने यार,
अब हो तो होगी उम्रे इबादत बसर किधर।।
वारफ़्तए–तलाश से राहों का तूल पूछ,
गर जाने इन्तेज़ार कहे बेख़बर किधर।।
ज़िन्दां हैं या चमन है वतन है यही 'नसीम',
जायें भी अब तो बुलबुले बे बालों पर किधर।।

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1, प्रथम पुरस्कार

लिफ्ट

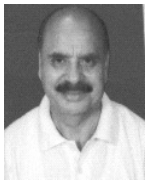

देव भंड़ारी
एच.एल.डी. रोड
कलिम्पोंग
जिला–दार्जीलिंग
मो.–08101181053

जैसे मैं घर के अन्दर घुसता हूँ, मूसलाधार वर्षा शुरू हो जाती है। लगता है मार्केट से जल्दी लौटकर खूब बुद्धिमानी का काम किया है मैंने। थोड़ी सी देरी होती तो बरसात की निर्मम प्रहार झेलनी पड़ जाती। अपनी तो छतरी लेकर चलने की आदत ही नहीं। छतरी लेकर जहां जाता हूँ वहीं छोड़कर आता हूं। एक बार नहीं, दो बार नहीं कितनी ही बार ऐसा हो चुका है। घर में आकर श्रीमती की गाली भी सुनना पड़ती है, ''कहां था तुम्हारा मन ? एक बार भूल हो सकती है, मान लिया, लेकिन यह रोज–रोज का छतरी छोड़ के आना, मुझे ठीक नहीं लग रहा है..... और क्या–क्या सुनना पड़ता। एक सीजन में कम से कम दो–तीन छतरियां खो जाती हैं। इसीलिए बरसात नहीं है तो बिना छतरी के ही घर से निकल जाता हूं। छतरी के मामले में पुरूष से ज्यादा औरतें होशियार लगती हैं। औरतें अपनी छोटी सी हेण्ड बेग के अन्दर छतरी फोल्ड करके रखती हैं और बरसात होने पर फट से निकालकर ओढ़ लेती हैं। ज्यादा धूप होने पर भी औरतें ऐसा ही करती हैं। पुरूष लोग सब तो मुझ जैसे भुल्लकड़ नहीं होते। छाते को ऐसे संभालकर रखते हैं जैसे जेवर सम्भालता है कोई।

हाँ, मैं तो अपनी ही बातें बोलते चला जा रहा था। अब आऊँ असली बात पर। मैं मन ही मन बहुत खुश हो रहा था कि बरसात में भीगने से बच गया। सोफा में धड़ाम से बैठ जाता हूं और अखबार पढ़ने लग जाता हूं। अखबार जैसा हाकर ने दिया वैसा ही है। श्रीमती जी अखबार नहीं पढ़ती। औरतों को दुनियादारी से ज्यादा अपनी घर गृहस्थी की फ़िकर होती है। जब उन को खबर जानने की इच्छा होती है तब मुझसे पूछती है। वह समझती है कि उनका मर्द जो है सब जानता है। सब बीमारियों की औषधियां, देश–विदेश की खबरें, वाद–विवाद, मत–मतान्तर मर्द को जानना ही पड़ेगा, ऐसा उनका विचार है। हाँ, दाल–चावल के भाव, नमक–तेल का भाव, सब्जी का भाव मर्द को पता नहीं होता, यह उनको अच्छी तरह पता है।

अखबार पढ़ने से ज्यादा खिड़की से बाहर झांकने में ज्यादा दिलचस्पी ले रहा हूं। मैं उनका विजन देख रहा हूँ जो छाता नहीं रखते। आदमी का यही स्वभाव होता है कि वह दूसरे के दुःख से बहुत मनोरंजन लेता है। मैं भी कहां कम हूं, आदमी तो ठहरा ! आम आदमी में से एक, लेकिन आम आदमी पार्टी का सदस्य मत समझ लीजियेगा। आजकल तो सब बातों में पोलिटिक्स होती है। मैं पोलिटिक्स से सदा दूर रहता आया हूँ। यही विजन मेरा भी हो सकता था। मैं भी भीग सकता था लेकिन देखिये मेरी ''दूरदर्शिता।'' मैं उनके दुःख मे शामिल नहीं हूं। उनका दुःख को मैं अपने घर की खिड़की से देख रहा हूं। अपने चालाकी पर थोड़ा गर्व होता है मुझे !

बरसात ऐसी जबरदस्त है कि लोगों की छतरी उसे झेल नहीं पा रही है। दो–चार कारें भी सड़क का पानी उछालते हुए दौड़ रही हैं। सड़क में दिखती हैं तीन युवतियां एक ही छतरी से आ रही हैं। उनके शरीर का सारा कपड़ा उनके शरीर से चिपक गया है। यह अनूठा सौन्दर्य है जो बार–बार देखने को नहीं मिलता। सहानुभूति होते हुये भी मेरी आंखें उनका पीछा करती गई दूर तक। फिर मैं झेंप गया और अपने आपको कोसने लगा।

एक कार आती है और 'नदी की बाढ़' जैसे सड़क के पानी को चिरते हुए चली जाती है। तीनों युवतियों की सलवार कमर से नीचे पूरी भीग जाती है। तीनों युवतियां ड्राइवर को कोसती हुई कपड़े हिलाने लगती हैं। बरसात थमने का नाम नहीं ले रही है। मैं खिड़की से देख रहा हूं। ज्यादातर लोग कार रिजर्व करके अपने–अपने गन्तव्य की ओर जा रहे हैं। इस बरसात् में कार भी मिले तब न ?

ये सब दृश्य मुझे उस दिन की याद दिला रहे हैं। वह दिन अथवा कहूं मेरी जीवन का एक अविस्मरणीय दिन ! आज से पैंतीस वर्ष पहले का ऐसा ही बरसात का एक दिन। उस दिन की बरसात जो थी, आज की बरसात से तेज थी। ऑफीस का सारा काम निबटाकर मैं ऑफिस से बाहर निकलता हूं। इतनी भयानक बरसात है, मुझे ऑफीस के अन्दर अहसास ही नहीं हो रहा था। जो विजन आदमी का आज देख रहा हूं उससे ज्यादा विजन उस दिन देखने का मिला था। उस दिन भी ज्यादा विजन औरतों का ही हो रहा था। औरतें और विशेषकर युवतियों की दुर्दशा देखने को मिली थी। जीवन के उत्तरार्ध मे आकर पूर्वार्ध की याद करना एक मजे की बात है। ऐसी घटना शायद अब नहीं घटेगी। सिर्फ याद बचेगी जीवन भर। पर आदमी का मन ऐसा होती है कि आनन्द को ढूँढता रहेगा आखिर दम तक। हर आदमी यही कामना करता रहता है कि अच्छे दिन आते रहे जीवन भर।

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1

''ठण्डी ! वह भी इतनी ! लीजिए चाय !'' गरम चाय का कप हाथ में लेकर जब पत्नी सामने आती है तो मेरा दिवा स्वप्न बन्द हो जाता है। अब मैं वास्तविक धरातल पर उतर आता हूं। उसके हाथ से चाय का कप अपने हाथ में लेता हूं।

''सिर्फ मुझे चाय ? तुम्हारे लिये कहाँ है ?'' मैं बोलता हूँ। और गरम चाय के कप को अपने ठण्डे होठों से जोड़ता हूँ। ''चाय सिर्फ मेरे लिये ? तुम्हारा कप भी ले के आओ न, साथ–साथ पियेंगे'' एक घूंट पीकर बोलता हूँ मैं।

''क्या मायने है.....चाय भी साथ–साथ पीना ?'' परिहास की लहजे में वो बोलती है।

''पति–पत्नी हैं न, सब काम साथ–साथ करते हैं''

''मतलब ?''

''मतलब साथ–साथ, समझकर भी नासमझ मत बनो। पति–पत्नी जो हैं, खाते हैं, पीते है, बाइस्कोप देखते हैं, नाटक देखते हैं, सोते हैं, जागते हैं, दान–धर्म, तीर्थ–व्रत जो करते हैं साथ–साथ करते हैं। मेरे कहने का मतलब यही है। इसी के लिये तो शादी..... समझ गईं ?''

''बस–बस समझ गई। घुमा फिराकर बात तो वही.....।''

''हाँ..... अब समझ गई.....।''

''आपके साथ बैठकर चाय पीने की फुरसत नहीं मुझे .....मैं जाती हूं चावल बिनने.....'' ट्रे से चाय की कप हाथ में लेती हुई कहती है।

उसके जाने के बाद फिर खिड़की से बाहर देखना शुरू कर देता हूँ। अभी तक कम नहीं हुई है बारिश। सड़क की नाली पानी से भर गई है। ओवरफ्लो हो के सड़क जलमग्न हो गयी है। हवा भी चल रही है और छींटें घर के अन्दर आ रहे हैं। उठता हूं खिड़की बन्द करने के लिये। नीचे सड़क में देखता हूं कि एक कार दौड़ रही है और एक दुकान की ओट में खड़ी युवती हाथ उठाकर कार से लिफ्ट मांग रही है। कार रूक जाती है। एक हाथ से साड़ी को ऊपर करती हुई और दूसरे हाथ से बरसात की बड़ी–बड़ी बूंदें सिर में हाथ रखकर रोकने का असफल प्रयास करती हुई कार के अन्दर चली जाती है। कार अपनी रफ़्तार में आगे चली जाती है।

ठीक ऐसी ही घटना पैंतीस वर्ष पहले की। उस समय मै दार्ज़ीलिंग में नौकरी करता था। रहता था सिंहमारी थाना के पास में और आफीस था गोयनका रोड में। बरसात के कारण तीन बजे ही आफीस बन्द कर के निकल जाता हूं। मूसलाधाार बारिश अपना करतब दिखा रही थी और रूकने का नाम नहीं। मैं खड़ा –खड़ा देखता रहा और प्रतीक्षा करता रहा बारिश रूकने का। डेरा था अपना, वहाँ से पाँच किलोमीटर की दूरी में। मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था वहाँ जाने का। सड़क नदी हो रही थी बरसात में, धान रोपने के खेत जैसी। कोई व्यक्ति भी इधर–उधर नजर नहीं आ रहा था। मैं असमंजस में पड़ जाता हूं। और कुछ समय बीतने के बाद सड़क के विपरित दिशा से एक कार दौड़ती हुई नजर आती है। मैं दोनों हाथ उठाकर रूकने का इशारा करता हूं। भाड़ा की पूछताछ करने का भी समय नहीं है। पीछे की सीट में बैठ जाता हूं। और ड्राइवर को बोलता हूँ ''सिंहमारी चलो।''

ड्राइवर टैक्सी घुमाकर सिंहमड़ी की राह पकड़ लेता है। गाड़ी थोड़ी सी आगे बढ़ी थी कि किसी का स्वर सुनाई पड़ता है। ''भाई जी'' बोल के एक युवती गाड़ी रोकने के लिये इशारा कर रही थी। उमर यही सोलह या सत्रह की होगी।

''रिजर्व टैक्सी है।'' बोल कर ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ाया लेकिन मैं उसको गाड़ी रोकने के लिये बोलता हूं। तेज बारिश में भीगा उसका शरीर ठण्ड से कांप रहा था। मैं कार का दरवाजा खोल देता हूं। उसके शरीर से पानी बह रहा था। सिकुड़कर वह मेरे बगल में बैठ जाती है।

उसके केश के छोर से पानी की बूँदे टपक रही हैं। उसके गाल, पीठ, कन्धे और वक्षस्थल पानी से तर है। पानी से उसकी साड़ी व ब्लाउज, बाजू और पीठ पर सट गये हैं। आँचल से मुख पोंछती है और केश को थोड़ा झटकारती है। पानी की छींटें मेरे मुख और गाल पर पड़ जाते हैं। वह लजाकर थोड़ा बोल जाती हैं ''सॉरी!''

''कोई बात नहीं ! '' उसको राहत दिलाने के लिए मैं बोल देता हूँ। मन मे क्षोभ, अपनी भूल पर थोड़ा सा पश्चाताप, उसके ऊपर लाज और पास में बैठे जवान पुरूष की झेंप, ये सब उसको बहुत कमनीय बना रही थी। मुझे लग रहा था गौर से देखूं उसको, जेब से रूमाल निकालकर उसका गाल पोंछ दूं लेकिन ये सब करना शिष्टाचार के खिलाफ था। मैं शिष्टाचार और अनुशासन में बंधा आदमी, ये सब नहीं कर सकता था। फिर भी किसी तरह, बाहर देखने के बहाने से उसको देखा करता था कभी–कभी। बुलाने का मन होता है, पता और नाम पूछने की इच्छा होती थी पर मेरा लजिला स्वभाव, संकोच से मजबूर था। उस पर अपना अहं भी था जो उसके मेरे बीच में दीवार बनकर खड़ा था। मुझे लग रहा था कि वो भी अव्यक्त बोली

में मुझे धन्यवाद दे रही थी लेकिन बोल नहीं पा रही थी।

''कहाँ उतरेंगी आप ?'' मौनता मैं ही तोड़ता हूं।

''लेबोड़ ग्राउण्ड के पास।'' कोमल स्वर बोलता है उसका।

''घर यहीं पर ?''

''नहीं। किराये के घर पर रहती हूं पढ़ने के लिए।''

''कहां पढ़ती हो ?''

''सेन्ट जोसेफ कॉलेज में।''

''किस इयर में ?''

''फर्स्ट इयर में।''

''अपना घर कहां है ?''

''तकभर टी इस्टेट। थर्ड डिवीजन, गोदाम धूरा।''

बातों का मीठा सिलसिला शुरू हुआ था कि मेरा गन्तव्य आ पहुंचा। मैं उतरता हूं गाड़ी से, सिंहमारी थाना के पास। ड्रायवर को रूपये देकर बोलता हूं ''इनको अपने घर तक पहुंचा देना।''

ऐसे हुई हमारी पहली भेंट! बरसात थोड़ी कम हुई थी। लम्बे–लम्बे कदमों से चलकर सड़क पार करता हूं और अपने डेरे के सामने खड़ा होता हूं। एक बार पीछे मुड़कर देखने की इच्छा होती है। गाड़ी आगे वाले मोड़ तक पहुंच चुकी थी। गाड़ी मेरी नजरों से ओझल हो जाती है, मैं उधर ही देखता रहता हूं। न जाने कितनी देर में मेरी सोच भंग हो जाती है और मैं घर के अंदर दाखिल हो जाता हूं।

कमरे में उठापटक की आवाज से मेरे सोचने का क्रम टूट जाता है। चावल बीनकर टिन के डिब्बे में भर रही है मेरी श्रीमती। आज का अखबार फोल्ड करके टेबल पर रख देता हूं।

''आज की ताजा खबर क्या है ?'' श्रीमती पूछती है।

''कैसी खबर ?''

''खबर ठीक है, बहुत बढ़िया है। देश उन्नति कर रहा है। हमारे दुःख के दिन चले गये, अच्छे दिन आ रहे हैं और क्या चाहिए ?''

''ये तो पुरानी खबर है। नयी खबर सुनाइये न।''

''देखती हो, बरसात हो रही है जमकर। इतनी तेज बरसात देखकर तुम्हें उस दिन की याद नहीं आती है ?''

''सोच रही हूं कि उस दिन आप मुझे लिफ्ट नहीं देते तो आज मैं यहां ये चावल नहीं बीन रही होती....''

''हां, मैं भी यही सोच रहा हूं।''

काव्य

बस्तरः कुछ कविताएं

एक.

प्रश्न यह नहीं
वहां पहले नक्सली पहुंचे या पुलिस
प्रश्न यही है कि
इन दोनों की वहां
कोई ज़रूरत आन क्यों पड़ी ?

दो.

चाहे मरनेवाले मरें
चाहे बचानेवाले
दोनों स्वर्ग जाएंगे यह तो पता नहीं
पता सिर्फ इतना ही–
हर बार मरनेवाले अपने परिवार के लिए
नर्क छोड़ जाएंगे।

तीन.

जरा कान लगाकर सुनिए
सुबक–सुबक कर रो रहें हैं
नदिया, जंगल, पहाड़, चिड़िया
और पेड़ की आड़ में आदिवासी
इन सबके बीच
झूम–झूम कर गा रहा है क्रांतिकारी
यह तो यूं ही सुनाई दे रहा है।

चार.

वो मरहम–पट्टी करेंगे
आप उन्हें अपने दिल में बसा लेंगे
फिर धीरे–धीरे आप बिल्कुल
उनकी तरह चीजों को देखने लगेंगे
सपनों के लिए आप
कुछ दिन बाद
बम–बारूद से भी खेलने से नहीं हिचकचाएं
वह दिन भी आएगा
जब दोनों तरफ से घिरे होंगे
गोली कहीं से भी चले
मारे सिर्फ़ आप ही जाएंगे।

पांच.

दाईं ओर का कामरेड मार दिया जाए
या बाईं ओर का कमांडो
कुछ देर बाद
सबकुछ यथावत् हो उठता है
सिर्फ़ धरती की सिसकियां गूंजती रहती हैं
आसमान में दूर–दूर तक

जयप्रकाश मानस
एफ–3, आवासीय परिसर
छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षामंडल
पेंशनवाड़ा, रायपुर (छ.ग.)
मो.–094241–82664

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1, प्रथम पुरस्कार

खोया क्या ?

जय मरकाम
ग्राम–मारडुम,
ब्लॉक–लौहण्डीगुड़ा
जिला–बस्तर छ.ग.
9770506034

बात उन दिनों की है मै सोलह–सत्रह साल का रहा। जवानी की दहलीज पर दस्तक देते ही लाखों अरमान, ख्वाहिशें स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगी थीं। सच क्या ? झूठ क्या ? रास्ता कौन सा सही है ? और उससे भी बड़ी बात मुझे किसी की सलाह या टोकना तो इस उम्र में मेरे पैर काटने के बराबर मालूम होता था।

जतीन और मैं याने ''जय'' क्लासमेट होने के साथ–साथ दोस्त भी थे। जतीन के पापा एक व्यवसायी थे तो उसके यहां पैसा–कौड़ी की कोई किल्लत नहीं थी। पर मैं एक छोटे किसान का बेटा! जो साल में एक बार फसल पकने से ही खाद्यान हेतु बचत कर, धान, कोदो, मडिया आदि बेच, अनाज से सिर्फ और सिर्फ एक–दो महीने ही कुछ पैसा देख पाता। इसके बाद साल भर गरीबी एवं तंग हालात में दसो–महीने एक–एक रूपया के लिए तरसता मानो जैसे अकाल पड़ गया हो। फिर भी अति आवश्यक होने पर खाद्यान हेतु बचत–संग्रहीत डुसी(धान सुरक्षित रखने का बांस की खपच्चियों से बना एक बड़ा सा टोकरा) से ही एक–दो पैली धान बेच इमर्जेन्सी की पूर्ति कर पाता।

पर मेरा दोस्त तो रोज नोट गिनता था। क्योंकि उसके पापा व्यवसायी–दुकानदार होने के कारण उसे भी स्कूल आने के पहले एवं स्कूल से वापस जाने के बाद दुकान में बैठना पड़ता था। फिर क्या था ? यदि समुद्र में से एक लोटा पानी निकालते है तो क्या फर्क पड़ता है अर्थात जतिन भी दुकान की तिजोरी से रोज कुछ पैसे स्कूल खर्च के लिए रख लेता था। कुछ पैसे मतलब इतना कि जितना मेरे घर में शायद उतना पैसा दस–बारह लोगो के संयुक्त परिवार में भी नहीं होता था। जतिन ठहरा एक धनवान सेठ का बेटा और मै, एक गरीब किसान का बेटा किन्तु मैं जतिन का घनिष्ठ मित्र! इस मित्र–मण्डली में चार–पांच और दोस्त भी थे जो जतिन के राजा हरिशचन्द्र की प्रवृति के कारण पार्टिसिपेट करते थे। स्कूल के लन्च और अन्य छुट्टियों में जतिन ही हमारा लन्च बाक्स और होटल मालिक था क्योंकि हम, जो चाहे, जैसा भी मिले वैसा ही खाकर तो स्कूल का मुंह देखने आते थे। और किसी भी जीव को यदि फ्री में उसकी औकात एवं सोच से ज्यादा पसन्द का कुछ खाने को मिले तो वह स्वतः ही आवश्यकता से ज्यादा डकार जाता है।

हमारा भी यही हाल होता फिर भी शायद जतिन को हमारी गरीबी और अन्तरमन के विचारों का आकलन तक नहीं होता था। वह तो सिर्फ इतना जानता था कि हम उससे पैसा–कौड़ी के मामले में कमजोर हैं और उसे तो पैसों की वेल्यु तक मालूम नहीं थी। इसलिए शायद वह हमें कभी टोकाटाकी या मना तक नहीं करता था न ही मतलबीपन करता। हां, हम कभी–कभी उसके होमवर्क या नोट्स बनाने में मदद जरूर करते थे। और ये हमारा फर्ज भी था क्योंकि हम जतिन का नमक खाते थे। इस प्रकार मैं भी स्कूल जाने के लिए हमेशा तैयार रहता। साल में सरकारी छुट्टियों को छोड़ गिनती के ही तीन–चार दिन स्कूल नहीं जा पाता था। और साल भर स्कूल! स्कूल! और बस स्कूल!

दिन कटते गये। अब हम भी कुछ बड़े हो गये थे। हमारी सोच, भावना, जरूरत, विचार–परिवेश, आवश्यकता सबकुछ बदलने लगे थे। अब लन्च टाइम में सिर्फ होटल में मिलने वाले भजिये या बिस्कीट खाना बोगस एवं बोरियत वाला लगने लगा था और चाय पीना तो खडुसपन या कहे पुरानी सोच लगने लगी थी। और फिर इन्सान के पास पैसा खर्च करने को हो तो वह जल्दी ही अपनी सोच एवं मांग के अनुसार अपने खाने–पीने की जरूरतों को भी बदलता है। हमारे साथ भी वही हुआ ! हम नाश्ता के बाद चाय की जगह छुप–छुपकर पिछवाड़े में सिगरेट पीने लगे और फिर ये सिलसिला रोज चलता रहा। अब नाश्ता कर पानी–पीना भी दुश्वार लगने लगा तो फिर चिकन–रोस्ट पार्सल बंधवाकर स्कूल से दूर सुनसान खेत में या फिर एक–दो किलोमीटर दूर जंगल में पिकनीक जैसे माहौल में हम छः–सात दोस्त बैठे होते। इसके बाद स्कूल से दूसरे पहर में गायब रहना हमारी आदत होती गयी। पानी की जगह चिकन–रोस्ट के साथ देशी–शराब पीने लगे थे और साथ में धूं–धूं उड़ाते सिगरेट! कभी–कभी तो अंग्रेजी–अद्धी जिसे गांव में चेपटी कहते हैं, का भी जुगाड़ हो जाता था।

मैं अपने गांव से लगभग दस किलोमीटर दूर एक बड़े–गांव जहां बारहवीं कक्षा तक का स्कूल था वहां पढ़ने जाता था। क्योंकि मेरे गांव में तो सिर्फ आठवीं कक्षा तक का स्कूल था। और जतिन तो उसी बड़े–गांव के एक सेठ का एकलौता बेटा था और दो बहने थीं। हम लोगों ने ग्यारहवी कक्षा तो जैसे–तैसे पास कर ली किन्तु बारहवीं कक्षा में भी हमारी आदत नहीं सुधरी और वही सिलसिला चलता रहा। जबकि 'बारहवीं बोर्ड एग्जाम है' हमको पता होते हुए भी। मैं तो पढ़ाई में होशियार था ही फिर जी जतिन के पैसो से लफुटगिरि, गलत संगत में पढ़कर कमजोर होने लगा था। फिर भी स्कूल से घर आकर

पढ़ाई जरूर करता था। मै मुफ्त में मिली दावत को तो खाता गया; गलत से गलत खान–पान तक, नशा करने कब पहुंचा, पता ही नही चला। और इधर मेरे बूढ़े मां–बाप खून पसीना एक कर खेती में रात–दिन जुतकर मुझे पढ़ाई के लिए भेजते रहे। मुझे उनकी भावनाओं एवं आशाओं का कभी सुद(याद) नहीं पड़ा। और खुद के कैरियर–भविष्य का तो पता ठिकाना ही भूलकर अंधा हो गया था।

जैसे–तैसे बोर्ड की परीक्षा निपट गयी। अब गर्मियो में, मै गांव में ही रहकर अपने मां–बाप के पुरकति(पुस्तैनी) खेती–बाड़ी के कार्यो में हाथ बंटाता था। किन्तु मुझे जतिन के साथ बिताये, खाये–पीये वे सभी पल चल–चित्र की भांति चित्रित होकर उसके साथ फिर से उन्हीं लम्हों में बैठने को प्रेरित करते थे। हमारा मन भी कितना स्वार्थी और लालची होता है जो अपना कर्तव्य भूल मुफ्त की रोटी खाना चाहता है। किन्तु मैं अपने घर–गांव से किसी भी बहाने से जतिन के पास नहीं जा पा रहा था।

गर्मी की छुट्टियों का डेढ़–दो माह होने को था। कुछ ही दिनों में पता चल ही गया। पर ये क्या मेरे वो सभी लंगोटिया साथी फेल हो गये और जतिन भी लगभग सभी विषयों में फेल हो गया था। हां थोड़ी–बहुत तसल्ली मुझे जरूर हुई क्योंकि मैं मां–बाप को नाक कटने से बचा लिया था किन्तु दोस्तों के लिए दुःख के साथ अफसोस था। मै पास हो गया था वो भी लगभग प्रथम श्रेणी 62 प्रतिशत के साथ।

आज मैं खुद पे और मेरे कर्मो पे शर्मिन्दगी महसूस कर रहा था तो मन में कई प्रश्नों के बवंडर उठते जा रहे थे। और मुझमें इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि मैं जतिन और अन्य दोस्तों से मिल सकूं। मैं अनायास ही कई सवाल खुद से करते हुए एवं खुद ही से अपने सवालो के उत्तर पूछते–ढूंढते–सोचते गांव की ओर हताश कदमों से चल पड़ा था। फिर अचानक किसी ने खबर दी कि तुम्हारे किसी एक दोस्त ने फेल होने के कारण आत्महत्या कर ली। मेरा सिट्टी–पिट्टी गुम होकर नाड़ी–ठण्डा हो गयी। क्योंकि मैं और मेरे दोस्त ने पहले ही खुद के पैरों में कुल्हाड़ी मार ली थी जो आज घाव बनकर मौत के रूप मे आत्महत्या तक पहुंच चुकी थी।

फिर तो होश आते ही मेरे मशीनी मस्तिष्क में सवालों के अम्बार लग गये और इस कृत्य के लिए स्वयं को जिम्मेदार मान लिया तथा उस दोस्त की दुःखद अन्तिम यात्रा तक में शामिल नहीं हुआ। और अन्य बचे–कुचे दोस्तों के बारे में दुःख ही दुःख में डूब गया। जतिन का क्या है वह तो फेल होने पर भी अपना व्यवसाय सम्भाल ही लेगा पर क्या अन्य दोस्त भी अपना जीवन किसी तरह काट ही लेंगे या फिर .....? के सवाल से सन्न रह गया। और मैं....? क्या होगा मेरा भविष्य ? मैं क्या करूंगा ? क्या खाऊंगा ? मेरे मां–बाप के सपनों का क्या होगा ? जतिन और अन्य दोस्तों के मां–बाप अपने बच्चो से कोई आरजु नहीं की होगी क्या ? क्या हमें अपने त्वरित–स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपने मां–बाप परिवार के सपने–ख्वाहिशों को रौंदने का अधिकार है ?

आज वर्षो बाद मै अपने सभी दोस्तों से दूर फिर यह सोचकर महसूस कर रहा हूं कि आदमी को सुख के पल बहुत मिलते हैं। पर क्या वही गटर–मस्ती ? सोचने को तो वह बहुत कुछ सोचता हूं। पर क्या हम खुश तो दुनिया खुश! जी हां , ये तो आज की मानसिकता और ख्याल है भला लोग क्यों दूसरों का सोचे क्योंकि हम तो सिर्फ और सिर्फ अपने लिये जीते हैं। भले ही क्यों न घर में मां बीमार रहे, हमें तो घर की नहीं अपनी खुशी प्यारी है। अरे हम तो यंग जनरेशन हैं ! जियो तो बिन्दास ! ये हमारी अदा है!! भला कैसे मां और बाप की सोचें ? ये आज के डेट में कामन है। भला हम इन्हें समझाने वाले पंडित कौन होते हैं। इनका टेलेन्ट जो माता–पिता से भी बढ़कर है। अरे भाई आज का जनरेशन बदल रहा है। ये पुरानी बातो एवं ख्यालों में बिल्कुल भी विश्वास नही करते न ही पुराने चीजों पर चाहे वह पुराने हो चुके अर्थात बूढ़े मां–बाप ही क्यों न हो ! उन्हें उनकी कोई परवाह नहीं ? आखिर आज के युवा मार्डन जो हैं। सच ! खुदा तुम मानव मस्तिष्क को इतना विकसित किये जा रहे हो कि मै तो क्या ? सारी दुनिया अपनी मर्यादा एवं दायित्व भूल गयी। अरे भई ये तो कामनसेन्स की बातें हैं।

जी हां मेरी मानसिकता बहुत बदल चुकी है। पता नहीं आपका क्या हाल है ? मैंने तो जिन्दगी में हमेशा आगे की सोची, पीछे क्या रखा है मैंने तो जाना ही नहीं। मुझे और आपको सिर्फ और सिर्फ भविष्य प्यारा लगता है। भविष्य ही सब कुछ है। भविष्य ही ईश्वर लगता है। और आने वाला कल हमें हर नजर में खुशियों से भरा लगता है चाहे उसका अन्जाम कुछ भी हो। हमने आगे बढ़ने की चाहत में पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा न जाना कि पीछे हमारी भी विरासत थी! कहानी भी! हमने इस मुकाम तक पहुंचकर ये भी नही जानना चाहा कि हम इस मुकाम को पाने तथा पहुंचने के लिए कितने खट्टे–मीठे रास्तों से गुजरे और उससे भी बढ़कर कितनी मेहनत करनी पड़ी ? कितनी ठोकरें खाईं ? कैसे मुश्किल हालातों का सामना करना पड़ा ? कई गलतियां की और उससे भी बढ़कर आखिर खोया क्या ?

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1, द्वितीय पुरस्कार

काश...!

श्रीमती बकुला पारेख
18, जूनियर एम.आई.जी.
जयबजरंग नगर,
छोटी बमोरी, इंदौर
मो.–09826952602

प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व की मंद–मंद चलती हवा, उड़ते हुए पक्षियों की चहचहाहट की मधुर ध्वनि, कहीं दूर मंदिर में आरती के समय होने वाले घंटनाद ने मन को एक अदम्य प्रसन्नता से भर दिया। छत पर प्राणायाम करते हुए सूर्यदेव के आगमन से पूर्व फूटने वाली रश्मियों का आभास किया तन ने, और संपूर्ण तन, मन एक अलौकिक ऊर्जा से भर गया। 'भ्रामरी' करते हुए ''ऊँ'' की ध्वनि के साथ मंदिर में बजने वाली घंटी की धीमी आवाज मिलकर साक्षात शिवजी के रूप में आभास करा रही थी। प्रतिदिन प्राणायम के पश्चात 'ध्यान' के दौरान दिन से संबंधित देवता का ध्यान करना मेरी दैनिक दिनचर्या में शामिल है। आज सोमवार है आँखें बंद कर शिवजी का ध्यान कर रही हूं चंद सेकंड पश्चात 'शिवजी' का स्थान विचारों ने ले लिया।

''सच मन की चंचलता को कोई भी नहीं माप पाया होगा, कितनी जल्दी विचारों के विषय बदल जाया करते हैं। और आखिर हम हैं मायावी जीव, साधु सन्यासी तो हैं नहीं सो हमारे मन की चंचलता परिवार के आसपास ही केंद्रित हो जाया करती है। और क्यों न हो ? आज का दिन विशेष खुशी का दिन जो है। मेरे आलोक का अमेरिका जाने का स्वप्न जो सच हो गया है। हां, डगर वह प्राप्त नहीं कर सका जो वह चाहता था यानी वह 'स्टुडेन्ट वीजा' पर वहां जाना चाहता था, लेकिन परिस्थितिवश ग्रीनकार्ड धारी लड़की से शादी रचाकर गृहस्थी की डगर पकड़ अमेरिका जा रहा है।

पिछले दो सालों में कहां–कहां, कैसे–कैसे संजोगों से पाला पड़ा है यह सोचते हुए मन की चंचलता ने 2 वर्ष पूर्व के विचार सागर में गोते लगाना शुरू किया, और साथ ही उपजी विचारों की श्रृंखला! जुलाई का महीना होते हुए भी तेज तपन, फुल स्पीड पर पंखा चलाकर दोपहर में लेटी ही थी कि फोन की घंटी घनघनाई ''जरूर आलोक का होगा, आज उसका कैम्पस इंटरव्यू जो था,'' सोचते हुए रिसीवर उठाया, बिलकुल सही अनुमान था, फोन आलोक का ही था।

''मम्मी मेरा चयन हो गया है, 5 लाख का पैकेज एवं 2 साल का बान्ड भरना है।'' आलोक की आवाज में छिपा मेरी अनुमति का संदर्भ पहचानते हुए मैंने कहा– ''बेटा अपने प्रोफेसरों एवं मित्रों से सलाह कर लो।'' अनुमति देने में मेरे असमंजस का कारण था आलोक का स्वप्न, विदेश जाकर आगे की पढ़ाई करना जब से B.E. में एडमिशन हुआ था, बस एक ही रट लगाए था ''मुझे मास्टर डिग्री के लिए U.S जाना है। ''

इस महत्वाकांक्षा के साथ उसने फायनल में आते ही टोफेल, एवं जी.आर.ई. की परीक्षाएँ पास कर ली थीं, स्कोर भी अच्छा हासिल कर लिया था। मित्रों के साथ कॉलेज में कैम्पस के तहत इंटरव्यू में पास हो कर स्वयं की योग्यता साबित कर दिखाई, लेकिन मैं जानती थी कि, उसकी रूचि कहां पर केन्द्रित है! शाम को त्रिवेदी जी ऑफिस से आए, टाई ढ़ीली कर थोडा रिलेक्स होकर बैठे, चाय के साथ बिस्कीट, मठरी ले कर मैं उनके पास बैठी, थोडा उत्साहित होकर समाचार सुनाया।

''आलोक का छै लाख के पैकेज पर चयन हो गया है''

''अरे वाह!'' चुस्की लेते हुए मुस्कराकर बोले, ''यह तो बहुत अच्छी खबर है। कहाँ है आलोक ?'' एक गर्व की झलक देखी मैंने त्रिवेदी जी के चेहरे पर जो पितृ–प्रेम का स्पष्ट भाव प्रकट कर रही थी।

''आलोक तो अभी आया नहीं है।'' मैंने प्रश्न का उत्तर दिया, दोपहर से मन में घुमड़ सी रही आस को जुबां पर लाते हुए बोली– ''सुनिये, जब से आलोक इंजीनियरिंग में गया है, एक ही सपना रहा है उसका, आगे की पढ़ाई के लिए अमेरिका जाना। कैम्पस में चयनित हो कर उससे अपनी योग्यता तो साबित कर दी, लेकिन उसकी महत्वकांक्षा का क्या ?''

''यह सब तो ठीक है, ममता!'' त्रिवेदी जी गहरी सोच लिये बोले ''बहुत खर्च होता है, वहाँ पर जाने के लिये, विशेष रूप से उन छात्रों को जिन्हें वहां पर सरकारी मदद जो फीस के लिये होती है, नहीं मिल पाती है।''

कुछ आशा संजोते हुए मैंने पूछ लिया ''और बैंक ऋण सुविधा ?'' ऋण संबंधी मेरे अल्पज्ञान पर तनिक मुस्कराते हुए वे बोले ''अरे ऋण के बगैर तो कुछ संभव ही नहीं है। ऋण की सुविधा देते जरूर है, लेकिन ब्याज दर भी बहुत ऊँची होती है।''

इतनी जानकारियां लेते रहे और कभी मुझे बताया नहीं सोचते हुए मैंने कहा– ''कम से कम थोड़ी बातचीत इस बारे में होती रहती तो आलोक भी सोचता अपने इस उद्देश्य के बारे में।''

''उसे सब मालूम होगा ममता।'' आलोक के आते ही इस विषय पर बात करने की मैंने ठान ली! शायद मैं भी मन ही मन डर गई थी, उन आर्थिक खर्चों की सच्चाईयों से।

''5 लाख का पैकेज कम नहीं होता। यह तो कम्प्यूटर लाइन है वर्ना आर्थिक मंदी के इस दौर में अन्य क्षेत्रों में कहां

इतना पैकेज भी मिल पा रहा है ? आगे होगा तकदीर में तो कंपनियां भी स्वयं के खर्चे पर विदेश भेजती हैं।''

रात 9 बजे आलोक आया, खाना परोसते हुए मैंने बात छेड़ ही दी। ''बेटा भारत में भी अब नौकरियां अच्छी हैं तुम्हारी लाइन के लिये।'' बात का संदर्भ समझते हुए वह बोला– ''मेरा अपना एक उद्देश्य है। उसे मैं पूरा करना चाहता हूँ। रहा सवाल आर्थिक मामले का मैं शिक्षा ऋण पर ही जाऊँगा। मम्मी, सब स्वयं चुकाऊंगा।''

''बच्चे का उद्देश्य पूरा करने में हम साथ न देंगे तो कौन देगा ?'' उसके दृढ़ निश्चय पर हमने भी सहमति की मुहर लगा दी। और आलोक ने अपने प्रयासों का श्री गणेश किया। 1150 G.R.E. के स्कोर के साथ सिलसिला शुरू हुआ, आवेदन भेजने का। एक आवेदन जो विदेशी विश्वविद्यालय में भेजा जाता है, के साथ तरह–तरह के प्रमाणपत्र, विभिन्न ऑथारिटीज के हस्ताक्षर एवं जाने कितने ही दस्तावेज। तौबा! आलोक की व्यवस्तता को देख मैं दंग ही रह जाती, पूरे तन–मन धन से वह अपने उद्देश्य के पीछे लगा हुआ था, खाने–पीने की सुध तक नहीं थी उसे। उसकी मेहनत को देखते हुए त्रिवेदी जी भी उसे आर्थिक संबल प्रदान कर रहे थे।

''एक वह युग था, एक परिवार नियोजन चलन में नहीं था, व्यक्तिगत रूप से किसी बच्चे पर ध्यान देना असंभव सा ही था।'' त्रिवेदीजी चाय पीते हुए बोले, ''अब यह युग है प्रतियोगिता का! देखो मानसिकता भी समय के साथ कैसे बदल जाती है न ममता ?''

''आप ठीक कह रहे हैं।'' मैंने उत्तर दिया।

दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। एक उम्मीद रूपी सूर्य बादलों से बाहर आकर रश्मियां बिखेरना चाहता था, बस इंतजार था धीरे–धीरे बादलों रूपी समय के सरकने का। कुल 6 विश्वविद्यालयों में आलोक ने आवेदन भेजे अब इंतजार था वहाँ से जवाब आने का। लगा समय बहुत धीरे जा रहा है। एक मिशन जिसमें कुछ भी निश्चित नहीं था, अभी तो सिर्फ पैसे ही लगाए जा रहे थे। कभी यह प्रमाणपत्र तो कभी वह। त्रिवेदी जी क्रेडिट कार्ड ले कर खर्चों का हिसाब लगा रहे थे।

''और कितना बाकी है आलोक ?'' संदर्भ समझते हुए कुछ झिझकते हुए आलोक बोला।

''बस एक आवेदन और पापा।''

दोपहर को लेटी, कपिल याद आया, कपिल, बड़ा बेटा, दिल्ली में है, अपने परिवार का खर्च ही पूरा नहीं कर पाता, वह भी इंजीनियर है, लेकिन उसे मिलने वाली तनख्वाह से वह संतुष्ट नहीं है। एक कारण यह भी है कि वे आलोक की इच्छा पूरी करने में साथ दे रहे हैं।

विदेश जा कर स्कॉलरशीप पर पढ़ना और कमाना मध्यमवर्ग के एवं उच्चवर्ग के छात्रों के लिए एक आम बात है आजकल। अपनी ऊंची पढाई का प्रतिफल वे ऊंचा चाहते हैं, यही कारण है कि भारत में वे रहना नहीं चाहते। लेकिन वहां जाने से पूर्व की कोशिश इतनी महंगी होगी इसका अंदेशा मात्र भी नहीं था मुझे। दस्तावेजों को बनाने में, काउन्सलर की फीस के साथ 1 लाख रूपया लग चुका था, अगर वहाँ पर फायनान्सीयल सहायता मंजूर न हुई तो एक सेमिस्टर की फीस 4 लाख 65 हजार है, बाकी खर्च अलग.... तो स्वयं पढाई के साथ कमाना अत्यंत जरूरी है। विभिन्न तथ्य सामने आते–आते मुझे हकीकत का आभास होने लगा वह हकीकत थी 'पैसा!'

दिन गुजरते गए, अब आलोक को इंतजार था, भेजे गए आवेदन पत्रों के उत्तर का। एक महीने के अंदर उसके साथ वाले सभी मित्रों द्वारा भेजे गए आवेदनपत्रों के प्रत्युत्तर में कॉल मिल गए, किसी को एक तो किसी को 2 यूनिवर्सिटी द्वारा। आलोक के 6 आवेदनपत्रों से 5 के निरस्तपत्र प्राप्त हो चुके थे। अब एक 'सेमलीना' युनिवर्सिटी से लेटर आना शेष था बस उसी पर आस बनी हुई थी। आलोक को पूर्ण यकीन था कि वहां से उसे अवश्य कॉल मिलेगा, इस यकीन का कारण यह था कि सचिन, उसके मित्र को यहीं से कॉल प्राप्त हुआ था जबकि उसके नंबर आलोक से कम थे। पूर्ण रूप से निश्चिंत था आलोक, और उसके साथ हम भी। दिन में तीन बार 'नेट' पर मेल चेक करने बैठता। तनाव एवं भागादौड़ी के कारण दुबला गया था आलोक।

मुझे ठीक याद है, उस दिन मंगलवार था, दोपहर में लेटी थी तभी बेल बजी। बाई थी।

''आज बहुत जल्दी ?''

''हाँ 11 नंबर का बेटा विदेश जा रहा है, सब छोड़ने मुंबई जा रहे हैं, सो जल्दी बुला दिया था।'' सुन तो रही थी उसकी बातें, लेकिन मन की सोच दूसरी तरफ गति ले रही थी। ''हम भी जल्दी ही छोड़ने जाएंगे आलोक को।'' सोचते हुए आलोक की तरफ देखा, पत्रिका के पन्ने पलटते सो गया था।

बाई को बर्तन दे कर टी.वी. खोलकर बैठी। 'पड़ोसन' पिक्चर चल रही थी, कितनी ही बार देखी थी, फिर भी देखी,

मनोरंजक फिल्में दिमाग के तनाव को कम करती है। पिक्चर खत्म हुई घड़ी देखी। घड़ी 7 बजा रही थी शाम के। टाइम पता ही नहीं चला, मच्छरों की भनभनाहट शुरू हो गई थी। खिड़कियां बंद की, आलोक के कमरे की ओर गई देखकर अवाक् रह गई दिल धक् से बैठ गया। कम्प्यूटर खुला पड़ा था, आलोक उल्टा लेटा हुआ था, किसी आशंका से भयभीत हो मैंने पूछा ''आलोक बेटा बहुत थक गया है क्या ?'' करवट लेते हुए फूट–फूट कर रोने लगा।

''मम्मी लास्ट यूनिवर्सिटी से रीजेक्शन लेटर आ गया है।'' सुनकर हतप्रभ हुई मैं, लगा कहीं से अचानक फिसल कर गिर पडी हूँ मैं और साथ में मेरा आलोक! जैसे किसी फूलों के बगीचे में फिसल कर गिर पड़े हों काँटों पर और वह कांटे की चुभन, मिल गई गहरे दुःख के साथ, जो महसूस हुआ मुझे। आलोक की स्थिति समझते हुए मैंने उसे सांत्वना दी।

''कोई बात नहीं बेटा, कोशिश करना हमारा काम है।''

फूट पड़ा आलोक ''इतने पैसे खर्च हो गए और कोई फल नहीं निकला।''

''तू पैसों की चिंता मत कर, फिर जमा हो जाएंगे। यहाँ पर भी नौकरी तो मिल ही रही है न ?'' येनकेन प्रकार से मुझे उसकी मानसिक स्थिति को संभालना था, घबड़ा रही थी, आलोक को सदमा न लग जाए। क्या करूँ ? कैसे समझाऊँ आलोक को ? अचानक तनाव बढ़ने से मुझे मेरा बी.पी. बढ़ता हुआ महसूस हो रहा था, तभी बेल बजी। रवि, आलोक का मित्र था, वह दिल्ली में नौकरी करता है, पूरी हकीकत से वाकिफ होकर वह आलोक का मूड बदलने हेतु उसे पिक्चर ले गया।

मैं हतप्रभ सी सोफे पर बैठ गई। लगा जैसे मंजिल तक पहुंचने पर धक्का खा लिया, और बेबस हो मैं धक्का देने वाले को देखने के लिये मुड़ी। हां, मैं आलोक के दुःख को आत्मसात कर उस कारण तक पहुँचने की कोशिश करने लगी, विचारधारा ने अपना प्रभाव बनाया, शशीकांत की बात याद आ गई, ''आंटीजी, विदेश में शिक्षा पास करना 'भाग्य' पर निर्भर करता है।'' पता नहीं क्या और कैसा क्राइटेरिया होता है उनका, कम स्कोर' प्राप्त करने वाले भी 'वीजा' प्राप्त कर लेते हैं, और उसी लाइन में अधिक नंबर पाने वाले भी नहीं जा पाते हैं– मैं भी स्नातक हूँ हर बात की तह तक जा कर समझने लायक दिमाग रखती हूं। बात घूमती रही दिमाग में। ''नहीं कुछ तो होगा। लेकिन क्या ? आलोक का संपूर्ण एकेडेमिक रिकार्ड भी अच्छा ही रहा है। फिर ? ऐसा क्यों हुआ ?''

शाम हुई त्रिवेदीजी की राह देखकर बैठी थी, तभी अरूण, आलोक का स्कूल मित्र आया बातचीत के दौरान उसने कुछ और तथ्य बताए ''आंटीजी पिछले साल मेरे भाई के मित्र का U.S. कॉलेज से कॉल आया था। कॉल तभी आता है जब कॉलेज वाले आर्थिक दस्तावेज चेक करते हैं। सभी खाना पूर्ति के पश्चात 'वीजा' के लिए साक्षात्कार दिया तो 'आर्थिक दस्तावेज' के मामले पर ही 'वीजा' रीजेक्ट कर दिया!'' मैं शांति से उसकी बातें सुन रही थी, वाकई महत्वपूर्ण जानकारियां थी। आगे उसने बताया, ''अगले दिन उसके एक मित्र का 'वीजा' हेतु साक्षात्कार था बिलकुल वैसे भी दस्तावेज थे, लेकिन उसे 'वीजा' मिल गया। यहाँ तक कि उसके दस्तावेज देखे भी नहीं गए। आंटीजी, उसमें आलोक की स्थिति अच्छी है कि वह कॉल पर ही अटका।''

''हाँ बेटा, तुम ठीक कह रहे हो।'' सोचने लगी, जीवन में कहां, कब, कैसी परेशानी आएगी किसी को भी ज्ञात नहीं होता है। अखबार लेकर बैठी, पर दिमाग में विचार कुछ और चल रह थे, आलोक की मनःस्थिति को कैसे संभाला जाए ?

कुछ याद आया मुझे, पिछले महीने मीरा के बेटे की शादी थी, उसे भी विदेश जाना था, लेकिन 'वीजा' नहीं मिल पाया था, उसने ग्रीनकार्ड होल्डर लड़की से शादी रचाई, वो अब अमेरिका में हैं। सोच आगे बढ़ी इस विषय पर क्यों न आलोक से बात की जाए ? शाम को त्रिवेदी ऑफिस से आए, मन की बात लाख छुपाने पर भी चेहरे पर आ ही गई।

''क्या बात है ?'' संक्षेप में बताते हुए आँखें डबडबा गई। थोड़े तनाव में आ गए वे, स्वयं को संयत करते हुए बोले ''हम मध्यमवर्गीय के लिए नौकरी बहुत मायने रखती है, विदेशी शिक्षा पैसों का खेल तो है ही, लेकिन 'भाग्य' का भी है यह साबित हो गया। पाई–पाई जोड़ते हैं, फिर भी बच्चों की महत्वकांक्षा देखते हुए साथ भी देते हैं, लेकिन अब आर्थिक नुकसान के साथ आलोक को भी संभालना होगा।''

पिक्चर देख कर आलोक रात को आया। मूड देखकर त्रिवेदीजी ने बात छेड़ी, ''यहां पर भी नौकरी है तुम्हारे लिये'', ''नहीं!'' बीच में ही बात का संदर्भ समझते हुए आलोक बोला, ''मैं दुबारा, कोशिश करूँगा।''

इस अटल निर्णय की तह पाकर मैंने पूछ ही लिया ''क्या हम ग्रीनकार्ड होल्डर लड़की की तलाश करें ? मीरा का बेटा समीर भी वैसे ही गया, अब वहां वह काम के साथ पढ़ रहा है।''

''सोचूँगा.....'' आलोक अपने कमरे की तरफ गया।

अगले दिन उसने अपनी रजामंदी दे दी। मैं समझ रही थी, उसे अपना उद्देश्य पूरा करना था।

अब सिलसिला शुरू हुआ ग्रीनकार्ड होल्डर लड़कियों के बायोडाटा से रूबरू होना। ग्रीनकार्ड होल्डर लड़कियां भारतीय लड़कों के अच्छे चरित्र को मानते हुए या माता–पिता की इच्छावश मूल भारतीयों से शादी करना चाहती है। 4 लड़कियों की तस्वीर आई थी, इनमें से रीना की तस्वीर पसंद आई। शक्ल के साथ उसकी उम्र, पढ़ाई आदि का मेलजोल भी ठीक बन रहा था। आलोक को रीना की तस्वीर, बायोडाटा से अवगत कराया गया। भारतीय मूल की रीना कानपुर की थी। संयोगवश रीना के माता–पिता मेरे मायके के पड़ोसी के रिश्तेदार निकले। 2 वर्ष पूर्व बेटी के पास अमेरिका चले गए। 'तत्काल' में टिकट बुक करवा कर हम तीनों कानपुर पहुंचे। वहां जाने की मेरी जिद् थी, ताकि घर–परिवार से थोडा परिचित हो जाए।

देखने में सामान्य लेकिन व्यावहारिक तौर पर खुलेपन से रीना ने अपनी बातें रखीं, उसने बताया कि वह भी भारतीय संस्कृति को ही पसंद करती है, वहां पर भी काफी भारतीय हैं, लेकिन मैच जम नहीं पाया। 23 साल की उम्र में, गहरी समझ जो जीवन साथी के संबंध में थी मैंने उस लड़की में महसूस की। बार–बार वह 'चरित्र' एवं 'संस्कार' पर जोर डाल रही थी, जबकि इन शब्दों के मायने कुछ अधिक अर्थ नहीं रखते हैं वहाँ पर। चलो अपनी–अपनी संस्कृति है प्रत्येक देश की, बुद्धिमानी इसी में है कि प्रत्येक अच्छी प्रणाली को हम ग्रहण करें।

हम लोग चारों अभिभावक बातचीत करते रहे, वे दोनों बाहर घूमने गए, लौटने पर दोनों की 'हाँ' पर सगाई की रस्म सादगी से पूरी की। कोर्ट में मेरेज दाखिला दे कर दस्तावेज बनवाने दे दिये गए। हम खुश थे आलोक की खुशी से, बोला ''मम्मी बस एक बार चला जाऊँ, अपनी पढ़ाई मैं वहाँ जरूर पूरी करूँगा।''

''अरे आज चाय नहीं मिलेगी क्या'' ? लो 'ध्यान' करते हुए मैं विचारों के समुद्र में गोते लगाने लगी थी, आई, कहते हुए दरी उठाई तह बनाते हुए नीचे उतरी। शादी का मुहुर्त जल्द ही निकाल लिया गया। मेहमानों से घर भर गया ! धूमध ाम से शादी हुई। रीना के पास छुट्टियाँ कम थी सो 15 दिन पश्चात् वे लोग चले गए।

बालकनी में कुर्सी डाल कर हम लोग बैठे थे, तभी आलोक का फोन आया। आलोक वह बहुत खुश था, उसने बताया कि उसे एक सॉफ्टवेर कंपनी में काम मिल गया है, थोड़ा समय, पैसा जोड़कर वह आगे पढाई की इच्छा पूरी करेगा।

आलोक मेल करना सीखा गया था, सो दो दिन में एक बार मेल कर लिया करती थी, विज्ञान की प्रगति ने दूरियों को मिटा दिया है सो अमेरिका भी अब दूर नहीं लगता है।

त्रिवेदीजी की नौकरी के 2 साल बाकी है, आलोक–रीना बुला रहे हैं, रिटायरमेंट के बाद हो आएंगे, पीछे वाली सक्सेना जी बखान करते नहीं अघाती, यह विदेश का है, तो वह विदेश का हैं, सभी चीजें इम्पोर्टेड बताती रहती है, पहले तो सीधे मुँह बात नहीं करती थी, अब आ कर बैठती हैं, आलोक के बारे में पूछती रहती हैं। सब विदेश का 'मायाजाल' है, सोचते हुए मैं लेट गई।

''अरे आपने आज के केलेन्डर पर तारीख देखी ?'' हर्ष मिश्रित आवाज में मैंने त्रिवेदीजी से पूछा चश्मा उतारकर केलेन्डर पर नजर डाली '6 जुलाई',

''अरे हाँ, आज तो आलोक की शादी की सालगिरह है न! चलो बेटा–बहू को बधाई देते हैं!''

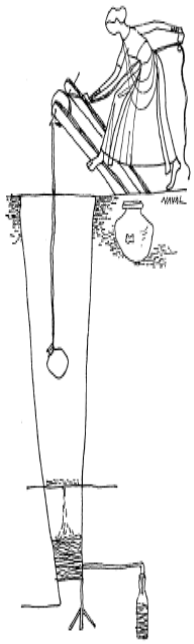

तभी फोन की घंटी बजी, पता नहीं क्यों, एक पल के लिये मेरा दिल धड़का, फोन की घंटी कुछ अधिक तेज महसूस हुई, तेज कदमों से चलते हुए पहुंची, रिसीवर उठाया, सामने आलोक था। मुझे महसूस हुआ, जैसे वह कुछ कहना चाह रहा है, लेकिन कह नहीं पा रहा है, मन की घबराहट को काबू करते हुए मैंने बोला, ''बधाई हो बेटा!'' कोई प्रत्युत्तर न पा कर मैं बोल पड़ी, ''क्या बात है बेटा, सब ठीक है न ?''

''नहीं मम्मी! रीना को प्रेगनेंसी थी, टेस्ट करवाए, रिपोर्ट में एचआईवी पॉजिटीव है, और कल मेरा भी परीक्षण करवाया... बोलते हुए फफक पड़ा आलोक।

''बस बेटा, मैं आगे की बात समझ गई।'' आंखों के सामने अंधेरा सा छाने लगा।

काश...काश...!

एक डॉक्टर का लिखा हुआ आलेख पढ़ा था–''शादी के पूर्व कुछ बीमारियों के टेस्ट अवश्य करवाना चाहिए।'' उसे फालो किया होता, लेकिन अब 'काश', काश ही रहेगा।

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1, द्वितीय पुरस्कार

पुरस्कार

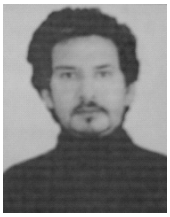

कुमार शर्मा 'अनिल'
1192–बी, सेक्टर
41–बी, चंडीगढ़
फोन–09914882239

साहित्य अकादमी का ऑडिटोरियम काफी भरा हुआ नजर आ रहा है। वर्ष 2014 के साहित्य अकादमी पुरस्कारों की घोषणा का अवसर है। मैं चुपचाप बाहर खड़ी रही। हाथ में अकादमी का निमन्त्रण पत्र पसीने से चिपचिपा उठा। ऊपर बड़े बड़े अक्षरों में मेरा नाम लिखा है – श्रीमती मीरा शर्मा (पत्नी स्व. अभिमन्यु शर्मा) मन भर आया तो आंखों को साड़ी के किनारे से पोछ लिया। अभी कुछ पल ही गुजरे होंगे कि स्वयं निदेशक ने आकर मुझसे 'नमस्ते' की। 'अरे मीरा बहिन! आप बाहर क्यों खड़ी हैं ?' फिर बड़े आदर भाव से मुझे विशिष्ट मेहमानों के साथ पहली पंक्ति में ले जाकर बिठा दिया। जानती हूँ। यह सम्मान अभिमन्यु की वजह से ही है वरना गांव की पाठशाला में कक्षा आठ तक पढ़ी मीरा को इतने सारे विद्वानों में बैठने को कौन बुलाता।

शुरू–शुरू में कितनी कोशिश की थी अभिमन्यु ने मुझे पढ़ाने की। पर मैं तो जैसे सब कुछ भूल जाना चाहती थी उन्हें पाकर। वे मुझे कोई कविता कहानी सुनाते, फिर पूछते–'कैसी लगी ?– 'अच्छी, बहुत अच्छी'–मेरा रटा रटाया उत्तर होता। शुरू–शुरू में वे हंस कर टाल जाते, बाद में मेरी प्रतिक्रिया ही मांगनी बंद कर दी। मुझे भी बुरा नहीं लगा। कौन सुनता उनकी इतनी लम्बी–लम्बी कहानियां।

'सनी' के जन्म के बाद तो जैसे मैं और भी उनसे दूर हो गई। वैसे भी उनकी दिनचर्चा कुछ इस तरह की थी कि शायद ही कोई वक्त वह मेरे लिए निकाल पाते। घंटों लेखन में डूबे रहते, आसपास से बेखबर। मुझे भी उन्होंने एक नियति मानकर अपना लिया था वरना कहीं ना कहीं उनके दिल के भीतर एक ऐसी पत्नी की चाह थी जो उनके 'साहित्यिक मन' को समझ सके, उनकी रचनाओं पर बहस कर सके। किन्तु मुझ जैसे कमपढ़ के लिए क्या यह सम्भव था ? इन पांच वर्षों में मुझे कभी नहीं लगा कि वे मेरा हाथ पकड़ कर चल सके हैं, बार–बार मैं पीछे छूट जाती। पहले यह 'पीछे छूट जाना' अनायास होता था। परन्तु बाद में यह सप्रयास होने लगा। दरअसल 'पीछे लौटना' उनके स्वभाव में नहीं था। जबकि मैं उनके इस स्वभाव को सब कुछ खो देने पर ही समझ सकी। बाद के दो वर्षों में तो छोटी–छोटी बातों पर मैं उनसे उलझ पड़ती – 'ये कपड़े हैंगर पर क्यों नहीं टांगे, कागज फर्श पर क्यों बिखरे पड़े हैं, इन्हें रद्दी की टोकरी में क्यों नहीं डाला।' वे चुपचाप सुनते रहते फिर पैन कागज हाथ में ले घर से निकलते तो रात को ही घर लौटते। चुपचाप खाना खाते फिर अपनी 'डायरी' लिखते रहते। मैं बिस्तर पर सोने का नाटक किये पड़ी रहती। वे चुपचाप आते, मेरे पास सोते 'सनी' को उठाते और सीने से लगा कर सो जाते। रात भर मेरी आंखों से आंसू बहकर कनपटियों के आसपास से गुजरते हुए तकिये में जज्ब होते रहते। 'सनी' से उन्हें बेहद प्यार था और मैं जानती थी कि 'सनी' ही मेरी 'सोशल सिक्यूरिटी' था, जिसके लिए वह बार–बार पीछे लौटते वरना बहुत पहले ही मैं उन्हें खो चुकी होती।

'नमस्ते' दीदी, कहां खोई हुई हो ? – मेरी तन्द्रा एकदम टूट गई––'अहां.....नमस्ते.....आप ? एकदम से पहचान नहीं पाई उसे। हल्की गुलाबी साड़ी, बड़ी–बड़ी भावप्रवण आंखे, पतले होंठ और उन पर बिंधी शांत, संयत स्मित की एक महीन सी रेखा। बहुत ही आकर्षक व्यक्तित्व। 'मैं, अनुप्रिया..... अनुप्रिया श्रीवास्तव'। अचानक ढेर सारी घृणा उतर आई है मेरे चेहरे पर। 'तो ये हैं अभिमन्यु की अनुप्रिया, लेकिन अब यहां क्या लेने आयी है ? मेरे अभिमन्यु की हत्यारी।' वह मेरे पास वाली कुर्सी पर ही बैठ गई। मैं घृणा से अपनी कुर्सी की दूसरी ओर झुक कर बैठ गयी। लोगों से बहुत सुना था इसके बारे में। सभी पत्र–पत्रिकाओं ने अभिमन्यु आत्महत्या को 'भावनात्मक हत्या से उपजी आत्महत्या' कहा था। उनके अपन्यास 'रेत के समंदर' की नायिका 'उपाशा' से अनुप्रिया को जोड़ा था।

डायरी के पृष्ठ तेजी से मेरी आंखों के आगे फड़फड़ाने लगे–'आज दसवां दिन है, तुम्हें यह शहर छोड़े हुए। तुम्हें इस तरह नौकरी छोड़कर नहीं जाना चाहिए था। तुम्हारी इस 'अबुद्धिमत्ता' के लिए मैं तुम्हें कभी माफ नहीं करूंगा। तुम ऐसा क्यों सोचती हो कि तुम्हारे कारण मेरा पारिवारिक जीवन तबाह हुआ है। इसके कारण तो मेरे व्यक्तित्व में खोजने होंगे..... ....मीरा के व्यक्तित्व में खोजने होंगे। और फिर तुम्हारा मेरी भावनात्मक परिधि से निकलने का प्रयास समाधान तो नहीं मेरी समस्या का। यह सच है कि मीरा का जाना तुम्हारे कारण हुआ। परन्तु वह पहले से ही मुझसे बहुत दूर थी। हमारे सम्बन्ध ा निरे शाब्दिक होकर रह गये थे। वे दो इन्सान जो एक जैसी चीजों को प्यार नहीं करते, जिनके सपने, वैल्यूज, आदर्श एक जैसे नहीं, प्रगाढ़ से प्रगाढ़ रिश्ते में बंधे होने पर भी साथ–साथ नहीं रह सकते। मेरी चेतना स्तब्ध सी हो गयी है। समझ नहीं आता ऐसे सम्बन्धों का क्या करूं ? कहां ले जाऊं ? मेरा व्यक्तित्व टुकड़ों में बिखर गया है .....मीरा.....सनी.....और तुम।

तुमने कभी कुछ नहीं मांगा मुझसे.....न मांगोगी। तुम्हारे स्वाभिमानी मन से मेरा घनिष्ठ परिचय है.....। परन्तु क्या मेरा फर्ज नहीं बनता कि तुम्हें एक सामाजिक धरातल मिले ? इसमें मेरा स्वार्थ भी है। मैं हमेशा के लिए इन 'रेत के समंदर' में तुम्हारी घनी छांह चाहता हूं। तुम ही तो वह ज्योति हो जिसके प्रकाश से मेरा पथ आलोकित होता रहा है। दो वर्ष पूर्व के एक साधारण से लेखक को एक नई धारा, एक नये वाद के रचियता के रूप में तुमने स्थापित कर दिया। तुम्हीं ने तो मेरे अवचेतन को झकझोरा था। बरसों से सोये उस लेखक की नींद को हौले से जगा तुमने देश की अग्रणी साहित्यकारों की श्रेणी में खड़ा कर दिया। मेरी कितनी साहित्यिक रचनाएं तुमसे विचार–विमर्श के बाद एक नये रूप में निखर कर सामने आयीं। मैं कई बार यह सोचने पर विवश हो जाता हूं कि तुम मेरी 'प्रेरणा' से मेरी कमजोरी कैसे बन गयीं और जैसे ही तुम्हें पता चला कि तुम मेरी कमजोरी बनती जा रही हो, एक झटके से तुमने वे सारे बंधन तोड़ डाले। मैंने वैसे भी तो तुम्हें कई बार स्पर्श किया था। फिर उस दिन ऐसा क्या हुआ कि तुम यूं एकाएक सब स्नेह के बंध तोड़ मेरी जिंदगी से ही नहीं, इस शहर से भी कहीं दूर चली गयीं। लेकिन जरा सोचना अनु!.....। क्या हम एक दूसरे से दूर जा पाये हैं ? शायद पहली बार अपने घर पर मैंने तुम्हे बाहों में भरना चाहा था.....। सच, वासना जैसा कुछ भी नहीं था मेरे मन में। तुम छिटक गयीं। फिर फफक कर रोती रहीं – 'मुझे अपने गृहस्थ जीवन की बरबादी का माध्यम मत बनाओ अभिमन्यु, मैं अपनी ही 'आत्मग्लानि' में घुटकर मर जाऊॅगी – प्लीज।' और तुम इस दुनिया की भीड़ में मेरे सारे सपने चुरा कर गुम हो गई। कोई ऐसा सूत्र भी नहीं है मेरे पास जो मुझे तुम तक पहुंचा सके। मैं बिखर गया हूं.....। चाहूं तो मीरा को बुला सकता हूं वह दौड़ी आयेगी.....परन्तु यह शब्दहीन ग्लानि क्या मुझे उसके साथ भी जीने देगी ?'

'मुझसे नाराज हो दीदी ?' – उसके स्वर में बहुत ही करूणा है। मैं चुप ही रही हूं। वह मेरी ओर भरी–भरी आंखों से देखने लगी। मैंने मंच पर नजरें टिका दी। कार्यक्रम प्रारम्भ होने ही वाला है। चारों तरफ बड़ी गहमा–गहमी है। सामने से जाते हुए एक वालंटियर से मैंने पूछा – 'एक गिलास पानी मिलेगा ?' 'पानी बाहर मिलेगा' – वह व्यस्त नजर आया। 'मैं लेकर आती हूं दीदी' – वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये चली गयी।

मैं मन ही मन सोचने लगी– 'है तो बहुत ही सुंदर, समझदार भी लगती है। इसी ने कोई चक्कर चलाया होगा वरना वे तो अपने काम में बहुत ही डूबे रहने वाले इंसान थे। पिछली पंक्ति में दो व्यक्तियों में क्षुसुर–फुयुर सी हो रही है– इन्हीं दोनों के बीच पिसता रहा बेचारा अभिमन्यु और अंत में दोनों ही छोड़ गयीं उसे।' 'गलती तो मिस श्रीवास्तव की है, भरी–पूरी गृहस्थी में आग लगा रही थी पिछले दो बरस से.....और जब मन भर गया तो.....' एक बोला। 'वैसे यार, इस अनु को जरूरत क्या थी शादीशुदा मर्द को फंसाने की, ढेरों कुंवारे मिल जाते' – फिर दोनो जोरों से हंस पड़े।

मैं मन ही मन खुश हो रही हूं। आखिर समाज ऐसे रिश्तों को मान्यता नहीं देता। कितनी प्रताड़ना मिली होगी इस अनु को। सभी तो जानते हैं कि प्रेम में असफल होने पर अभिमन्यु ने आत्महत्या की और उनकी 'प्रेमिका' के रूप में अनुप्रिया तो उनके जीवन काल में ही बदनाम थी। अभिमन्यु की आत्महत्या के पश्चात् सभी पत्र–पत्रिकाओं ने अभिमन्यु की दैनिक डायरी प्रकाशित की थी।

'पानी'–उसने आदर भाव से मेरे सामने गिलास कर दिया। मैं ना चाहते हुए भी पी गई। पीछे बैठे व्यक्तियों की वार्ता चालू है। अनु परेशान हो उठी। मैं मन ही मन खुश हो रही हूं– 'देख लिया न, पराये मर्दों से मौज मस्ती का अंजाम!'

मंच पर से परदा सरकने लगा। मेरी कल्पना में फिर उनकी डायरी के पृष्ठ फड़फड़ा गये।

'पत्रिका के कलापक्ष पर पिछले कई दिनों से तीखी प्रतिक्रियाएं मिल रही है। प्रबंधकों से काफी बहस के बाद 'कला सम्पादक' की नियुक्ति नहीं रहेंगी। देर रात तक कार्य करने में वह सहयोग नहीं कर सकती। साक्षात्कार में अगली प्रत्याशी एक लड़की थी। मैं पूर्व ही मन में निर्णय कर चुका था कि–'रिजेक्ट'। वैसे भी उसके पास केवल सामान्य योग्यता ही थी। वह किसी दूसरे शहर से आयी थी। मैंने औपचारिकतावश प्रश्न किया– 'इतनी दूर इस शहर में अकेले नौकरी कैसे करोगी, माह दो माह में छोड़ जाओगी ?'

'नहीं सर, मैं जिस शहर से आयी हूॅ वहां भी मैं अकेली ही थी, दरअसल इस दुनिया में भी मैं अकेली ही हूं। अनाथाश्रमों व नारी निकेतन में पली और बढ़ी। जब इस लायक हूं कि कुछ कमा सकूं तो सोचती हूं चंदे के पैसों से चलती इस जिंदगी को स्वयं सहारा दूं। और सर, मेरे लिए यह सिर्फ नौकरी नहीं है, मेरी हॉबी, मेरा भविष्य सब कुछ है' –कहते हुए वह भावुक हो गयी। मेरा कवि मन द्रवित हो उठा। जब अन्य सदस्यों के मत के विरूद्ध मैंने इस पद के लिए अनुप्रिया श्रीवास्तव के नाम की घोषणा की तो मुझे दूसरों की आलोचना का शिकार होना पड़ा।

अगले दिन से ही उसने कार्य आरम्भ कर दिया। वह बहुत मन लगाकर कार्य करती। कहानी–कविताओं पर उसकी

:स्कैच' लेखकों की भावनाओं को लकीरों से मूर्त कर देतीं। वह स्वयं भी बहुत अच्छी लेखिका थी। परन्तु यह बात मुझे बहुत देर बाद पता चली। मै उससे बहुत ही कम बात करता और उस दिन तो वह कितना सहम गयी थी। 'सर, आप इतने चुप क्यों रहते हैं ? –– मैंने नजरें उठाकर देखा – 'तुम यहां नौकरी करने आती हो या यह देखने की कौन कितना बोलता है, अपने काम से काम रखा करों, समझीं।'

अगले दिन से ही बिना वह हफ्ते तक नहीं आयी। मैंने प्रबन्धकों को अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए लिख दिया। डेढ़ हफ्ते बाद वह आयी। चुपचाप मेरे केबिन में मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। मैं बरस पड़ा– 'तुम्हें' पता है किस तारीख को पत्रिका प्रेस में जाती है ? ना कोई सूचना ना कोई एप्लीकेशन..... एक बात याद रखना मिस श्रीवास्तव, काम के प्रति लापरवाह लोगों को मैं बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करता। यदि तुम्हें नौकरी नहीं करनी है तो कल से तुम स्वतन्त्र हो..... अपना 'इस्तीफा' लिख देना, अन्यथा मुझे ही कुछ करना पड़ेगा।'

वह कुछ देर चुप खड़ी रही फिर रूंधी आवाज में बोली – 'सर, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उस रात पेट में तेज दर्द हुआ तो अस्पताल में एडमिट करना पड़ा। 'एपेन्डीसाइटिस' का आप्रेशन हुआ। बाद में तेज फीवर हो गया। सूचना देने को मैंने कहा था परन्तु.....।'

मेरा गुस्सा एकदम से काफूर हो गया। एक अकेली लड़की ने कैसे मुकाबला किया होगा मौत का। मुझे पश्चाताप होने लगा। मौत के मुंह से निकलकर आयी इस अनाथ लड़की से मुझे इस तरह का व्यवहार नहीं करना चाहिये था। मैंने उठकर उसके सिर पर स्नेह से हाथ रखकर माफी मांगी तो वह फूट–फूट कर रो उठी – 'मुझ अनाथ को कभी किसी ने प्यार, सम्मान नहीं दिया। बस, या तो सभी डांटते हैं या दया दिखाते हैं। आप भी सर, अभी डांट रहे थे अब आपको 'दया' आ रही है। मुझे नहीं चाहिये किसी की दया। मैं सिर्फ अपने काम का सम्मान चाहती हूं। वह मेज पर सर टिका रोती रही। एक कटु सत्य उसने मुझे पकड़ा दिया था। फिर वह उठी और आंसू पोंछ कर खड़ी हो गई–'आपको बुरा लगा होगा सर, सॉरी सर..... परन्तु इस्तीफा मैं नहीं दूंगी, क्योंकि मैं अपने काम का सम्मान करती हूं। आप चाहें तो मुझे निकाल सकते हैं।' – वह तेजी से उठकर चली गई। थोड़ी देर तक मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा। फिर 'बेल' बजाकर 'पियून' को दो काफी का आर्डर दे, अनु को बुलावा भेजा। वह चुपचाप सर झुकाये मेरे सामने बैठी रही। 'कॉफी पियो अनु और तुम इसी पत्रिका में कार्य करोगी। तुम्हें नहीं इस पत्रिका को तुम्हारी जरूरत है। और हां, इसे मेरी दया मत समझना। क्योंकि 'दया' वही कर सकता है जो दूसरों से बहुत ऊॅचा हो या अपने आप को समझता हो। मैं ना तो इतना महान हूं ना समझता हूं। मैं भी तुम्हारी तरह ही इस पत्रिका का एक कर्मचारी ही हूं बस।'

उसकी आंखों में सम्मान और स्नेह की एक भीगी सी परछायीं कांप उठी–'थैक्यू सर।' और वे स्तब्ध कर देने वाले पल कैसे भावनाओं की हदों को पार करके तूफान उठा देने वाले सम्बन्धों में बदल गये, इसे मैं आजतक नहीं जान पाया। धीरे धीरे अनु मेरे आत्मिक सम्बन्धों की परिधि में एक सुरक्षित बिन्दु की तरह स्थापित हो गयी। मीरा के साथ मेरे सम्बन्ध तनावपूर्ण तो नहीं थे परन्तु सुखद भी नहीं कहे जा सकते। वह इधर–उधर से अनु और मेरे आत्मीय सम्बन्धों के बारे में 'सुन –सुनकर' 'हीन भावना' की शिकार हो गयी थी। बिना बात मुझसे 'बहस' करती फिर हमेशा मायके जाने की जिद करती। उधर 'अनु' मेरे व्यक्तित्व का अंग बनती जा रही थी। मेरे अंदर के पुरूष को ऐसी ही नारी की खोज थी जो मेरे साहित्यिक मन को समझ सके। एक हमसफर की तरह मेरे कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सके। मीरा और मेरे तनावपूर्ण सम्बन्धों की जब उसे भनक लगी तो वह उदास रहने लगी। वह मुझे प्रेरित कि मैं मीरा का अतिरिक्त ख्याल रखूं। यूं मीरा से मुझे कोई शिकायत नहीं थी। जिन गुणों को मैं एक लेखक होने के कारण अपनी पत्नी में चाहता था वे गुण अगर उसमें नहीं थे तो इसमें उसका क्या दोष था। वह एक अच्छी घरेलू औरत थी जो अपने घर को खूब सजा संवार कर रखती। मेरी व सनी की आवश्यकताओं का पूरा ख्याल रखती, परन्तु.....? और इसी 'परन्तु' के बाद मुझे 'अनु' की आवश्यकता महसूस होती।

'दीदी, मैं आपसे सिर्फ एक बात कहना चाहती हूॅ। अचानक पास बैठी अनुप्रिया ने मेरी विचारधारा को तोड़ा। मैंने घृणा से प्रश्नवाचक निगाहें उसकी ओर उठाई। वह एक पल को मेरे चेहरे की घृणा से सहम गई। 'मैं नहीं जानती दीदी, मेरी बात को आप समझोगी या नहीं या जो मैं कहना चाहती हूं वह शब्दों के माध्यम से कह भी पाउॅगी या नहीं.....लेकिन मैं फिर भी कहूंगी' –एक खूब गीली और अवरूद्ध फड़फड़ाहट उसके ओठों पर कांप गई। लगा अब रो पड़ेगी। 'मुझे लगता है दीदी, हम लोगों के सोचने और करने में कहीं बहुत भारी गलती है। जब हम प्यार को इतना पवित्र, इतना महान कहते हैं और यह भी कहते हैं कि प्यार कभी भी, कहीं भी, किसी से भी हो सकता है, तो जब यह प्यार हो जाता है तो हमें ऐसा क्यों लगता है कि कोई 'वर्जनिय' कोई 'अनैतिक', 'असामाजिक' बात हो रही है। किताबी कहानियों से निकल कर वासविकता के धरातल

पर आते–आते यह प्यार इतना 'असामाजिक' कैसे हो जाता है ?' मैं झूठ नहीं बोलूंगी दीदी, अभिमन्यु से मैं प्यार करती रही हूं। यदि मेरी उन अनुभूतियों नितांत अपरिचित आकुलता जो चेतना के कई स्तरों पर स्वयं मुझे बेगानी सी लगती, को प्यार कहा जाये। अभिमन्यु के साथ सब कुछ 'रिफ्रेशिंग' सा लगता। लेकिन दीदी, इसे 'प्यार' का नाम मैं तब नहीं देती थी..... अब मानती हूं। तब ऐसा लगता था कि कुछ बेहद लचीला.....पारे की तरह पकड़ में न आने वाला निहायत ही चंचल ऐसा कुछ मन में है जो विश्लेषित नहीं होता। अभिमन्यु भी मुझे प्यार करते हैं यह बात मुझे जिस दिन पता चली उसी दिन मैं यहां से चली गई थी दीदी। मैंने अपनी तरफ से तो ठीक ही किया था दीदी। आपकी गृहस्थी उजाड़ना नहीं चाहती थी मैं। लेकिन किस्मत ने मुझे यहां भी धोखा दिया। मुझे अभिमन्यु की मौत का 'कारण' बना दिया। मैं पूरी दुनिया की नफरत झेलसकती हूं.... परन्तु दीदी आप, कम से कम आप तो मुझे समझ सकती हो। मेरा कसूर सिर्फ इतना है न दीदी, कि अनजाने में ही मुझे एक 'विवहित पुरूष' से प्यार हो गया था। अपने इस प्यार के प्रति उत्तर में मैंने 'अभिमन्यु' से कभी कुछ नहीं चाहा। उनका प्यार तक नहीं। पूरी दुनिया की सहानुभूति आपके साथ है। समाज अभिमन्यु की पत्नी होने का सम्मान आपको देता है। मैंने इस सम्मान की अभिलाषा कभी नहीं की। अभिमन्यु मेरे लिए इन 'रिश्तों' जैसी प्रतिबद्वताओं से बहुत ऊंचे थे। आपने अपना पति खोया है दीदी.... तो मैंने अपने सारे सपने, उमंग, उत्साह खो दिया है। पूरा जीवन मैं इस आत्मग्लानि में घुटती रहूंगी कि अभिमन्यु की मौत का कारण रही हूं मैं। मैं खुद नहीं सोच पा रही हूं कि मैंने सही किया था या गलत। आपके पास तो और भी सहारे हैं बेटा है, पूरा परिवार है। मेरे लिए तो पूरे जीवन में एक अभिमन्यु ही थे। मैं उनकी 'मौत' की जिम्मेदार हूं न दीदी.....लेकिन क्या यह सब मैंने जान–बूझकर किया ? मैं तो अपनी जान देकर भी उन्हें बचा लेती। बहुत सहा है मैंने दीदी..... सामाजिक प्रताड़ना, सस्ती और बाजारू लड़की की उपाधियां, अभिमन्यु की हत्यारी जैसी टिप्पणियां..... और पूरे जीवन सहती रहूंगी। खुद अपने आप को प्रताड़ित करूंगी अपनी इस गलती के लिए। किन्तु दीदी, अपने प्यार को मैं पाप नहीं मानती .....मैंने अभिमन्यु से प्यार कर कोई 'अपराध' नहीं किया..... क्या प्यार हो जाना गुनाह है दीदी ?' और वह फफक फफक कर रो पड़ी।

'रेत के समुंदर का केन्द्रीय भाव मुझे पहले भी झकझोरता रहा है। अभिमन्यु ने 'उपाशा' के चरित्र चित्रण से ऐसी ही सभी लड़कियों की पीड़ा को ही तो स्वर देने का प्रयास किया है जो विवाहित पुरूषों से प्यार कर अपना भविष्य दांव पर लगा देती है। जबकि उन्हें वहां से कुछ प्रतिफल की आशा नहीं होती। तो क्या ऐसा निस्वार्थ प्यार ज्यादा 'महान' नहीं कहलाना चाहिये ? व्यवसायिक व सामाजिक गणित के लाभ हानि से दूर उन लड़कियों को जो सामाजिक प्रताड़ना मिलती है क्या वह उचित है ? 'रेत के समंदर' की उपाशा से तो हम सहानुभूति रख सकते है तो वास्तविक जीवन की 'अनुप्रियाएं' चरित्रहीन कैसे हो गयी ?

सामने अब पुरस्कारों की घोषणा होने लगी है। 'वर्ष 2014 के लिए सर्वश्रेष्ठ उपन्यास का प्रथम पुरस्कार लेखक स्व.अभिमन्यु शर्मा को उनके उपन्यास 'रेत के समंदर' के लिए प्रदान किया गया है। यह पुरस्कार श्रीमति मीरा शर्मा जो 'अभिमन्यु' की पत्नी हैं, ग्रहण करेंगी।'– पूरा ऑडिटोरियम तालियों की गड़गड़ाहट से देर तक गूंजता रहा। मेरा मन अभिमन्यु की याद से द्रवित हो उठा। धीरे–धीरे मंच की तरफ चल पड़ी हूं। मुख्य अतिथि और अकादमी के निदेशक हाथ में पुरस्कार ले स्वागत में खड़े हैं। मैं उनके पास ना जाकर 'माइक' के पास जाकर खड़ी हो गई–'भाईयों एवं बहनों, अभिमन्यु जी की रचना प्रक्रिया को जो सम्मान मिला है उसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूं.....। परन्तु एक बात मैं कहना चाहूंगी। अभिमन्यु से भी ज्यादा सच्चे अर्थों में इस पुरस्कार की हकदार अगर कोई है तो वह है 'रेत के समंदर' की नायिका 'उपाशा....' जो एक विवाहित पुरूष से निस्वार्थ प्यार करती है। उसी की पीड़ा को स्वर देने का प्रयास मात्र किया था उन्होंने। उपाशा के चरित्र का चित्रण भी जिस स्वाभाविकता से अभिमन्यु ने किया है वह 'अनुप्रिया' से मिली प्रेरणा से ही सम्भव था। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि उपन्यास की नायिका 'उपाशा' और अभिमन्यु के वास्तविक जीवन की अनुप्रिया.....अनुप्रिया श्रीवास्तव इस पुरस्कार को ग्रहण करे– और बिना किसी से कुछ कहे मैं मंच से उतर फफक–फफककर रोती अनुप्रिया के पास जा उसे मंच पर ले जाने के लिए खड़ी हो गई हूं।

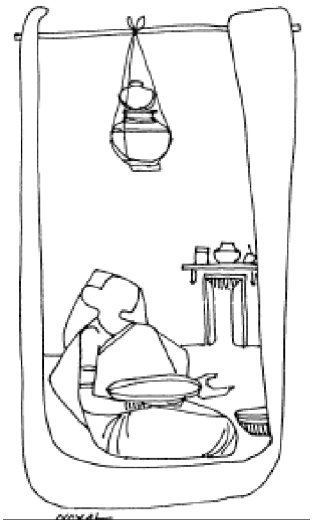

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1, तृतीय पुरस्कार

पीर पर्वत सी पिघलने लगी

माला वर्मा
हाजी नगर
24 परगना उत्तर
पश्चिम बंगाल
पिन–743135
फोन–09874115883

जब से शारदा देवी ने इकलौते बेटे के सिर मौर बांधा बजाय खुशी के उनको ये पल–पल एहसास हो रहा है जैसे जहर बुझा तीर किसी ने बेरहमी से सीने में चुभो दिया है। तीर न खुद खिसक रहा है न वो निकाल पा रही हैं। अजीब संकट में तन–मन पड़े हैं। बिस्तर पर जाती हैं तो करवटें बदलते घंटों बीत जाते हैं।

आज उनकी छटपटाहट से पास सोए बाल मुकुन्द जी की आंख खुल जाती है। अलसाये स्वर में कह उठते हैं, 'क्या बात है, नींद नहीं आ रही ? सांस की तकलीफ तो नहीं हो रही है। दवा ली थी ? न हो तो इन्हेलर ही दो फूंक मार लो........'

शारदा देवी उखड़े मन से जवाब देती हैं 'आप सो जाएं, मुझे कोई तकलीफ नहीं। कल दिन भर माथापच्ची करनी है..... चिन्ता से नींद कैसे आए......!'

'छोटा–मोटा आयोजन है, उसी में चिन्ता हो गई! शादी जैसा बड़ा अनुष्ठान संपन्न किया है तुमने, इतनी जल्दी भूल गई! अरे........ कल बहू का जन्मदिन ही तो है। उसके मायके वाले आयेंगे, उसकी सखी सहेलियां रहेंगी, अभिनव के कुछ दोस्त होंगे। फिर तुम्हें करना क्या है...... बस खड़े–खड़े निर्देश देने हैं। सारा कुछ नौकर संभालेंगे। बहू को कह दूंगा कि ऊपर की साफ–सफाई देख लेगी। भारी काम तो तुम्हें वैसे भी नहीं करने।'

'.......'

'मैं चाहता हूं जन्मदिन की पार्टी ऐसी जोरदार रहे कि बहू के मायके वाले भी सोचें कि आखिर किस घर में बेटी के पांव पड़े हैं। ले देकर यही तो हमारा एक बेटा है। उसकी पत्नी को चाहे बहू समझो या बेटी। मैं तो उसे अपनी बेटी ही समझता हूं। अब तुमसे क्या छिपाना। जब भी वो मेरे पैर छूती है, मुंह से आशीर्वाद स्वरूप खुश रहो बेटी ही निकलता है। बहू तो कह नहीं पाता........'

शारदा देवी का मन थोड़ा बदला और वे पति की तरफ घूम गई। बलिष्ठ भुजााओं और चौड़ी छाती में अपनै को बंधी पा वे राहत महसूस करने लगीं। उन्होंने थके शरीर को एकदम ढीला छोड़ दिया और चिंतन–मनन में डूबने उतरने लगीं।

बहुत वर्षों बाद पिछले तीन महीनों से पति संग अकेले सोने को मिल रहा है। वरना अभिनव की छुटपन से ऐसी आदत कि मां के बिना उसे नींद नहीं आती। सो विराट पलंग पर वे बीच में रहतीं, अगल–बगल पति पुत्र। अभिनव जब तक उनके पेट पर हाथ नहीं रखता, चैन नहीं पाता। अठ्ठाईस साल की उम्र हो गई पर बचपना नहीं छूटा। कई बार उन्होंने बेटे, को अलग सुलाने की चेष्टा की थी परन्तु जब रात में उसकी आंख उचटती और मां को नहीं देखता, तब संभालना मुश्किल हो जाता था। फिर तो गुस्से में सबकी नींद हराम कर देता!

स्कूल की पढ़ाई पूरी कर जब वह कालेज जाने लगा तब शारदा देवी ने कहा था– 'बेटा अब तू बड़ा हो गया। तेरी इतनी पढाई–लिखाई है अलग कमरे में क्यों नहीं सोता!'

अभिनव गलबहिया डाल जवाब देता 'मम्मी तुम कोई बच्ची हो जो मुझे डिस्टर्ब करोगी! उल्टे मैं ही देर रात पढता हूं और तुम्हारा पेट छूकर नींद खराब करता हूं........ और सच कहो मम्मी...... क्या तुम्हें मेरे बिना अच्छा लगेगा ?'

शारदा देवी मीठी छिड़की देती, 'हां........ हां क्यों नहीं अच्छा लगता। पर क्या सारा जीवन तुम्हारे पास बनी रहूंगी। तेरी शादी होगी तो क्या बहूरिया छोड़ मेरे पास सोयेगा ? बाहर कहीं पढ़ने लगा तो क्या मैं भी तेरे संग जाऊंगी ?'

अभिनव तुनक जाता और कहता, 'मुझे शादी–वादी नहीं करनी और बाहर पढ़ने भी गया तो तुम्हें भी हॉस्टल में साथ ही रखूंगा।'

शारदा देवी सारा वार्तालाप बालमुकुन्द जी को बतातीं और मातृत्व सुख से पुलकित स्वर फूटते–हमारे बेटे का बालपन कब जाएगा.......?

बेटे को कभी तिकड़म भिड़ाकर अलग सुलाने वाली शारदा देवी उस वक्त फूट–फूट कर रोने लगीं जब अभिनव डाक्टरी की पढ़ाई के लिए दूसरे शहर जाने की तैयारी करने लगा। सूटकेस सजाते वक्त, बेडिंग में ख्याल से चादर–तकिये रखते वक्त अनगिनत आंसू गिर–गिर कर सूखते जा रहे थे। कभी तो हिचकियां बंध जातीं।

और एक दिन अभिनव को जाना ही पड़ा। बालमुकुन्द जी कुछ दिनों से देख रहे थे। जितनी मां की पीड़ा परिलक्षित थी पुत्र की पीड़ा कम न थी। कई रातों में किसी वजह से उनकी नींद उचटती तो देखते अभिनव कभी मम्मी के पैर के पास

सोया तो कभी मम्मी की बाजुओं के अपने गले के घेरे में बांध रखा है।

स्टेशन छोड़ने के लिए शारदा जी राजी न हुई। बालमुकुन्द जी ने भी जोर न दिया। ये रोना–धोना स्टेशन पर शुरू हो गया तो तमाशा होगा। चीज सामान कार की डिक्की में रखवा कर उन्होंने अभिनव को बैठने का इशारा किया। जाने के पहले बेटे ने मां का पैर छूना चाहा। शारदा देवी भरभरा उठीं। बेटे को सीने से लगाए बिलख उठीं। अभिनव शांत था पर उसकी आंखें सजल थीं।

बालमुकुन्द जी कह उठे, 'बस करो अभिनव, ये लड़कियों जैसा रो रहे हो ? तुम्हारे दोस्तों को पता चलेगा तो वे सब मजाक उड़ाएंगे। अब तुम छोटे नहीं रहे। इतने दिनों तक मम्मी को हथियाये रहे। अब बुढ़ापे में एक संग नहीं रहने दोगे! कहो तो मम्मी का भी नाम मेडिकल कालेज में लिखवा देता हूं। वो भी तुम्हारे साथ डाक्टर बनकर निकलेगी.....'

बालमुकुन्द जी की बातों से माहौल हल्का हुआ। मां बेटे आंसू पोंछ मुस्करा रहे थे अब और देर करना ठीक नहीं। फुलस्पीड में गाड़ी आगे बढ़ गई। भारी कदमों से शारदा देवी अंदर सोफे पर निढाल पड़ गई। ये पहला मौका था जब बेटा उन दोनों से दूर हुआ था। कितनी ढेर सारी ताकीद तो उन्होंने दे डाली थी। रोजाना फोन से हाल–समाचार देना होगा, छुट्टियां होते ही घर आना होगा, खाने–पीने की जो इच्छा खरीद कर खाना या फोन से कहलाना ताकि यहां से पार्सल कर सकें। ऐसी ही अनगिनत न जाने कितनी छोटी–मोटी नसीहतें पिछले महीने भर से बेटे के दिमाग में भर रही थीं।

उनकी बातों से परेशान होकर एक दिन अभिनव ने कहा था 'कहो तो मैं पढ़ने ही न जाऊं, यहीं कोई नौकरी कर लेता हूं.....!'

शारदा देवी ने बेटे का माथा चूम जवाब दिया था, 'ये तो मां का मन है पगले..... लाख नसीहतें दूं फिर भी जी को कहां चैन है। बड़ी किस्मत से तो मेडिकल में चांस मिला है। तेरे डैडी डाक्टर हैं..... जब तू पैदा हुआ था तभी से उनकी दिली ख्वाइश थी–बेटे को डाक्टर बनाना है। आज जाकर हमारी साधना पूर्ण हुई। मन लगाकर पढ़ना और बाप से भी ज्यादा नाम कमाना.....'

इस तरह देखते–देखते दिन और वर्ष कटते गए। शुरू में तो बेटे का बिछोह बहुत अखरा पर बाद में एकदम से संयम कर लिया। बेटे के भविष्य में ममत्व का रोड़ा अटकाना कहां की बुद्धिमानी है। बाद में कम दिनों की छुट्टियां होने पर वे खुद मना कर देती थीं। फोन का क्रम रोजाना तो संभव नहीं था। अलबत्ता सप्ताह में एकाध बार बातें हो जाती थी।

अभिनव ने मेडिकल की पढ़ाई सफलता से खत्म की और पिछले दो साल से वो यहीं डैडी के चैंबर में बैठने लगा तथा आगे एम.एस. में नाम लिखवा लिया है। उसकी तो इच्छा थी कोर्स कम्प्लीट हो जाए फिर शादी हो। पर आस–पड़ोस, घर–परिवार का इतना दबाव पड़ने लगा कि पारूल को बहू बनाना ही पड़ा। अभिनव चाहता तो शादी टाल सकता था परन्तु पारूल की खूबसूरती उसे भा गई।

पारूल थी भी अति सुन्दर। क्या ऐसी ही सुन्दर कमनीय बहू की कल्पना शारदा देवी ने नहीं की थी! अभिनव की स्वीकृति से तो आनन–फानन में शहनाई बज उठी। ऐसी धूमधाम से शादी हुई कि लोग दबी जुबान से कहने लगे 'इसे कहते हैं इकलौती संतान का सुख। जो लेना–देना खर्च करना था एक बेटे पर न्यौछावर किया। दो–चार रहते तो ऐसी शान टपकती ? भई.....हम ही मूर्ख निकले जो पूरी फौज खड़ी कर दी.....'

बेटे की शादी में हफ्ते भर से रिश्तेदार आकर जुट गए थे। बालमुकुन्द जी का इतना बड़ा घर भी छोटा पड़ा गया। रोजाना शाम को ढोलक पर थाप पड़ती और 'पूबर–पश्चिमवा से अइलें सुन्दर दुल्हा.....' जैसे गीत गूंजने लगे। शारदा देवी मानो दस बेटों की साध इकलौते बेटे से पूरा करना चाह रही थी। शांतिप्रिय शोरगुल से दूर रहने वाले बालमुकुन्द जी भी अपने को कहां रोक पा रहे थे। किसी मनचाहे गीत में वे खुद शामिल हो जाते। उनके उत्साह से फिर महफिल में नई जान पड़ जाती।

शादी के बाद अभिनव और पारूल को अलग कमरा दिया गया। उस दिन शारदा देवी के अंदर कुछ झन्नाक से टूटा था। ये पहला मौका था जब अभिनव उनके पास रहते हुए दूसरे कमरे की ओर पैर बढ़ा रहा था। भला आज कैसे नींद आयेगी बेटे को मां के बिना.....अंदर ही अंदर जाने कैसा लगने लगा। छाती में एक मरोड़–सा उठा। तो क्या आज से बेटा पराया हो गया ? इतने दिनों की मोहमाया तपस्या भंग हो गई ? दो बित्ते की छोकरी आज मुझसे बड़ी हो गई ? अभिनव ने मेरी महत्ता पलभर में मिटा डाली! अब उसे मम्मी नहीं पारूल चाहिए ?

शारदा देवी और बेटे अभिनव के बीच पारूल का पदार्पण विस्फोटक सिद्ध हुआ। एक मां हठात् अपने अंधे स्वार्थ में मर्माहत हो उठी थी। बुद्धि कुंठित होकर तकलीफदेह बन गई।

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1

अभिनव की वह सुहागरात थी। एक नया हमसफर मिला जिसके साथ उसे सारा जीवन बिताना था। उसे बस पारूल नजर आ रही थी। मम्मी की बैचेनी की उसे क्या खबर!

एक वो दिन और आज! देखते–देखते तीन महीने निकल गए। शारदा देवी को बहू अब अपनी दुश्मन नजर आने लगी थी। अभिनव का कपड़ा–लत्ता, पढ़ने का टेबुल सारी चीजें दूसरे कमरे में चली गई थी। बेटे के बेतरतीब फैले चीज सामान को नौकर के रहते हुए भी खुद ठीक करती थीं..... इसमें उन्हें अपार सुख मिलता था। शादी के बाद वे बेटे के कमरे में गई थीं पर पारूल ने उनके हाथ से अभिनव की कमीज लेते हुए कहा था, 'मम्मी, इतने दिनों तक आपने इनकी देखभाल की। अब जब मैं आ गई हूं तो ये सब मुझे करने दें। आप आराम कीजिए। अगर ये छोटे–छोटे काम मैं न करूं तो समय कैसे कटेगा..... ।'

बड़े प्यार और अग्राह से पारूल ने उन्हें पलंग पर जबरदस्ती बिठा दिया। वे चुपचाप निरीह बनी देखती रहीं। इतना अधिकार आते ही साथ! बेटे का काम करके किस मां को खुशी नहीं होती ? पहले मैं ही तो करती थी। क्या बेटे के विवाह के बाद इतनी जल्दी बूढ़ी हो गई कि आराम करने की जरूरत आ पड़ी! मन ही मन क्रोधित वे सोचने लगीं.....इतना काम करने का शौक है तो घर से दोनों नौकर निकाल बाहर करूं ? जब सारा काम करना पड़ेगा तब अक्ल ठिकाने आएगी।

परंतु शारदा देवी चाहते हुए भी नौकर नहीं निकाल सकतीं। घर में परिचित लोगों का आना–जाना लगा ही रहता है। बिना नौकरों के एक दिन न चले। इसीलिए तो दो–दो नौकर रखे गए हैं। एक की बीमारीहारी रहे तो दूसरा काम करे और ये नौकर भी कोई नए हैं ? पिछले पंद्रह साल से लगातार शारदा देवी के पास बने हैं। अब तो दोनों की शादी की उम्र हो चली है। उसके बाद भी वे यहां से हटने वाले नहीं है। बालमुकुंद जी और शारदा देवी को वे अनाथ अपने मां–बाप से कम नहीं समझते। शारदा देवी भी दोनों पर समान रूप से नेह बरसाती हैं।

संबंध तो घर के हर व्यक्ति से अच्छा बना रहा सिर्फ बहू को छोड़कर, अब वे सोचने लगी थीं–काश अभिनव इकलौता न होता। उसके भी भाई–बहन रहते तो आज ये स्थिति न आती। अपने आप को वे इतनी तिरस्कृत और अकेली न समझतीं। अभिनव की झोली में अपना पूरा ममत्व उड़ेल अपने को रिक्त महसूस कर रही थीं। कहां तो वे अभिनव से मनुहार करके मनपसंद चीज बनाती–खिलाती। अब पारूल ने उनकी जगह ले ली थी। वैसे बहू पाक कला में दक्ष नहीं थी। फिर भी किचेन में कोई नई डिश बनाती और जिद करती आज मैं खाना खिलाऊंगी..... ।

शारदा देवी ऊपरी मन से खाने–पीने की तारीफ करती पर अंदर ही अंदर जलभुन जाती। उन्होंने कुछ दिन देखा फिर रहा न गया। पारूल के दौड़भाग करने पर बेरूखी से टोक ही दिया, 'घर में नौकर है खिलाने के लिए..... कम से कम उनकी आदत न बिगाड़ो.....'

आवाज की कटुता भले अभिनव न समझ पाया हो पर बालमुकुंद जी भांप गए। बात संभाल ली थी 'हां, पारूल तुम्हारी मम्मी ठीक कहती है..... तुम भी एक संग बैठकर खा लिया करो..... जब अपनी थाली लेकर आती हो हमारा खाना शेष हो चलता है..... फिर तुम्हें जल्दी अपना खाना निबटाना पड़ता है.....'

पारूल सहमी चुपचाप बैठ गई। शाम तक सास–बहू के बीच अबोला सा फैल गया। शारदा देवी सोने का ढोंग रचाए बिस्तर पर पड़ी थीं। नौकर के बदले पारूल ने चाय के साथ उन्हें उठाया तो पूछ बैठीं, 'अभिनव और डैडी ने चाय पी ली ?'

पारूल ने धीमी आवाज में जवाब दिया 'वे दोनों कब की चाय पीकर क्लीनिक चले गए।'

शारदा देवी ने अचकचा कर दीवार घड़ी देखी। शाम के सात बज रहे थे ? इतना वक्त गुजर गया और उन्हें एहसास न हुआ!' रात का खाना क्या बन रहा है ?'

उनकी गंभीर आवाज से पारूल चौंक गई फिर तुरंत कहा 'मैंने सोहन दा को आज मसालेदार सूखा मटन और पराठा सेंकने को कहा है।'

शारदा देवी को सुनकर अच्छा नहीं लगा। रोजाना सोहन–मोहन मुझसे पूछकर खाना बनाते हैं। आज मेरे बदले बहू से क्यों पूछा ? वे चिड़चिड़ी सी कह उठीं, 'बहू तुझे पता नहीं, अभिनव रात में नॉनवेज नीं पसंद करता.....'

पारूल ने रूकते हुए कहा 'मैंने उनसे पूछ कर ही सोहन दा को मटन बनाने के लिए का था।'

शारदा देवी निरूतर रह गई। चुपचाप पलंग से उठकर बाथरूम की ओर चली गई। मुंह हाथ धोते वक्त उनके दिमाग में कुछ खौल रहा था। अभिनव ने अपनी पुरानी मान्यताएं छोड़ दीं ? ये क्या वही अभिनव है जो गलती से भी रात में नॉनवेज मुख में नहीं रखता था। गुस्से में या तो बिना खाए जाता या दूध पीकर रह जाता। बहू के पूछने पर ये नहीं कह सकता था

कि मटन कल दोपहर में बनेगा ?

अभिनव बेटे..... क्या संपूर्ण बदल जाओगे ? मम्मी के लिए कुछ नहीं बचा कर रखोगे ? मम्मी अगर मर भी गई तो अब कोई फर्क नहीं पड़ने वाला.....?

सोचकर वे रो पड़ीं। मुश्किल से अपने को संयत कर बाहर निकली। अब वे हर पल बहू की नीचा दिखाने के फेर में रहने लगीं। इसी आक्रोश में शादी के बाद बेटे को हनीमून पर नहीं जाने दिया था। अभिनव के दोस्त हनीमून के लिए सलाह दे रहे थे। परंतु वे बिफर उठीं, 'इतनी जल्दी क्या है, अभी नए–नए क्लीनिक में बैठे हो। बाद में जाना। पर्व त्यौहार भी नजदीक हैं।'

अभिनव भोला था। दूसरा कोई लड़का होता तो मां की बात काट देता। परंतु उसने तुरंत कहा था, 'मम्मी ठीक कहती हैं अभी तो मरीजों की भीड़ है। मेरी पढ़ाई है। बाद में कभी चला जाऊंगा।'

पारूल मैके से अपने साथ नाईटी, सलवार–कुरता लेकर आई थी पर शारदा देवी ने इजाजत नहीं दी पहनने की। ये कहा कि यहां बड़े–बुजुर्ग आते रहते हैं.....उनके सामने इन सब ड्रेसों मे जाओगी तो पीठ पीछे हमारी बुराई होगी। जब मैके जाओ तभी पहनना.....'

पारूल ने चुपचाप अपना सलवार–कुरता सूटकेस में नीचे दबाकर रख दिया।

एक दिन सब्जी में नमक ज्यादा गिर गया पारूल से। तुरंत शारदा देवी ने टोक दिया 'मैके में कभी खाना नहीं बनाया था ?' अभिनव ने हंसते हुए कहा, 'मैं इसे रोज कहता हूं मम्मी से खाना बनाना सीख लो। खैरियत है सब्जी में नमक डाला था शक्कर नहीं...।'

पारूल एक तो ऐसे ही दुखी थी, ऊपर से पति की ठिठोली को आत्मसम्मान की प्रतिष्ठा बना रोते हुए उठ गई। शारदा देवी को बड़ा सुकून मिला। एक तो ये भी कहने से बच गई कि बहू को उनकी बात से तकलीफ पहुंची थी। अभिनव खाना छोड़ पारूल के पीछे लपका और थोड़ी देर बाद हाथ थामे वापस आ गया। शारदा देवी को महसूस हुआ जैसे वो जीत कर भी हार गईं थीं।

अचानक कानों में मंदिर की घंटियां बज उठीं। ये क्या..... वे सारी रात जागती रहीं थीं ? बालमुकुंद जी की बाहों में पड़ी अतीत खंगालने में लगी रहीं!

पति कुनमुनाते हुए पलंग से उठने की चेष्टा करने लगे। शारदा देवी ने उनका हाथ थामते हुए कहा 'अभी सुबह के मात्र चार बजे हैं, अभी से क्या खटर–पटर करना है..... चुपचाप लेटे रहिए। आपकी आवाज से दूसरे न जग जायें..... अभिनव कल देर रात तक हास्पिटल में था। उसे चैन से सोने दीजिए.....'

बालमुकुंद जी वापस लेट गए। स्नेह से पत्नी की पीठ सहलाई और कहने लगे 'देखो एक बात पूछना चाहता हूं। ईमानदारी से जवाब देना। क्या तुम बहू को पसंद नहीं करती ? उसे अपनी बेटी नहीं समझती ? कभी–कभी मुझे लगता है कि तुम उसे जानबूझ कर लांछित करती हो। बहू हमारी बहुत सीधी सरल है। सिर झुकाए सब सुन लेती है और हां.....! कल की बात बताऊं! अभिनव अपने कमरे में बहू से पूछ रहा था 'तुम इतने सारे नए सलवार–कुरता, नाईटी लाई हो। मुझे भी एक बार पहन कर दिखाओ ना! सच कहता हूं मम्मी डैडी बहुत प्रसन्न होंगे। दादा–दादी के सामने मम्मी नाईटी पहन कर घूमती थीं। साड़ी से सिर भी नही ढंकती थीं। फिर तुम सिर ढंके क्यों घूमती हो ?'

बेटे की बात पर बहू ने कहा 'तुम्हारी मम्मी को पसंद नहीं कि मै ये सब ड्रेस पहनूं। सिर ढंकने के आदेश भी उन्हीं के हैं..... जब मम्मी को पसंद नहीं फिर क्यों उनका दिल दुखाऊं!' मैं पास से गुजर रहा था सुन लिया। क्या सच में तुमने बहू को मना कर रखा हैं ?

पति की बात सुनकर शारदा देवी सकपका गई। उनकी चोरी पकड़ी गई। फिर भी आहत मन से कह उठीं, 'हां, ये सच है कि बहू रूपवती होते हुए भी मुझे पसंद नहीं। उसने मेरे अभिनव को मुझसे चुरा लिया है। अभिनव सिर्फ मेरा था और मेरा रहेगा। देख नहीं रहे, बहू के चलते उसके दिन कैसे कट रहे हैं! मेरे पास थोड़ा वक्त नहीं देता। क्या इसी आशा में बेटे को पढ़ा–लिखा कर बड़ा किया था कि एक अदद बीवी के आते ही मां को दरकिनार कर दे। आपको पता नहीं कि मैंने बेटे को किस लाड़–प्यार से पाला–पोसा है। अभिनव के चलते मैंने आपसे भी शारीरिक दूरी बनाए रखी वरना आजकल के जमाने में कोई ऐसी औरत मिलेगी जो पति का संग–साथ छोड़ दे! मैंने इतना कुछ त्याग किया और आप बहू का पक्ष ले रहे हैं ? मेरी तरफ से एक बार भी नहीं सोचा आपने ? सिर्फ मेरा ही दोष देखते हैं ?' कहते–कहते शारदा देवी सुबक उठीं।

'अरे.... अरे ये क्या कर रही हो। अब तुम मां के साथ सास भी बन चुकी हो। जब तक लड़के को तुम्हारी जरूरत

थी तुमने पूरी की। अब वह जवान हो गया है। शादी करके अपनी नई दुनिया बसाएगा। उसके अपने बाल–बच्चे होंगे। इस उम्र की अपनी एक शारीरिक मांग होती है जो बहू से प्राप्त होगी। शादी के बाद के कुछ वर्ष बड़े नाजुक होते हैं। एक अनजान लड़का–लड़की मिलते हैं। अपना सबकुछ एक दूसरे पर न्यौछावर कर जीवन भर का विश्वास तलाशते हैं। इस विश्वास को हासिल करने में शारीरिक सुख की सबसे ज्यादा महत्ता है। इस प्रक्रिया से उबरने में उन्हें वक्त लगेगा और यकीन मानो तो कहूं, जिस पल बेटा बहू दुनिया को नजरअंदाज कर असीम शांति की खोज में भटकते हैं। वही पल एक मां के लिए दुश्कर हो जाता है। ज्यादातर माताएं इसीलिए बहू से खिन्न रहती हैं कि अब बेटा निकला हाथ से..... किस कलमुंही ने आकर मेरे बेटे को हड़प लिया। बेटा मेरा था अब बहू के आदेशों पर चलने लगा.... ।'

'.....'

'और इसी भावना के तहत एक मां को बहू के सारे काम बेकार और फालतू लगने लगते हैं। वो बात–बात पर बहू के नुक्स निकालने लगती है। सुन्दर बहू कुरूप लगने लगती है। बहू का आजादी से रहना अप्रिय हो जाता है। उसका हंसना बोलना खाना–पीना, चलना सब बेढंगा लगता है...'

बालमुकुंद जी थोड़ा रूके फिर कहना शुरू किया, 'सच कहो शारदा! अभिनव से दूर रहने की कल्पना मात्र से तुमने बहू को नीचा नहीं दिखाया ? उसके कपड़ों में पाबंदी नहीं लगाई ? तुम तो एक आधुनिक ख्यालों वाली नारी हो। फिर इस लड़की पर इतने कड़े नियम क्यों ? याद करो शारदा– आज से तीस साल पहले तुम मेरी पत्नी बनकर इस घर में आई थी। आज की तुलना में क्या वो जमाना पुराना नहीं कहा जायेगा ? फिर भी तुम घर में नाइटी पहनी और मेरे मां–बाबूजी के सामने सलवार–कुरता पहन कर घूमती रहीं। ईमान से कहना, कभी तुम्हारे सास–ससुर ने टोका था या अपना रोष प्रकट किया था ? वे दोनों तो इतने पढ़े–लिखे आधुनिक भी नहीं थे। फिर भी बेटा बहू की खुशी में ही अपनी खुशी समझी थी। शादी के बक्से से साड़ी के साथ तुम्हारी नाईटी निकली थी तब मां ने मुझसे पूछा था 'बबुआ ई कौन पहिनावा ?' मेरे ये कहने पर कि ये ड्रेस सिर्फ रात में पहनी जाती है। उन्होंने जबरदस्ती अपने सामने तुम्हें नाईटी पहनने को कहा था और कितनी खुश हुई थी ये कहते हुए कि 'बबुआ बहुत नीमन पहिनावा बा, ऐकरा में त पूरा देह तोपाइल रहत बा.... मच्छरवों ना काटी...'

मां की बात सुनकर हम सब कितना हंसे थे। तो ऐसी थी तुम्हारी सास। इस तरह बाद में तुम्हें सलवार कुरते के लिए भी कहा था। हमारे घूमने–फिरने पर भी कभी रोक–टोक नहीं लगायी। उल्टे अभिनव को घर में संभाल लेती और हम निश्चिंत घूमते। मां का हमेशा कहना था 'दूनो आदमी हमेशा खुश रह.... हमरा कुछ ना चाही....' तुम भी मां की तरह एक बार सच्चे दिल से उदार बन के देखो। खुद पर परखोगी कि त्याग करने से कितना कुछ पल भर में बदल जाएगा... ।'

बालमुकुंद जी ने पत्नी की प्रतिक्रिया जाननी चाही। फिर आगे कहा, 'कुछ दिनों से तुम अपसेट लग रही थी इसलिए कारण जानकर नसीहतों का पिटारा खोल दिया। जब अभिनव को अपना समझती हो तो उसकी पत्नी भी तुम्हारी बहुत कुछ है। घड़ी देखो पांच बज गए... अब मैं चलता हूं। क्लीनिक जल्दी जाकर सलटा दूंगा ताकि दोपहर में चैन से घर रह सकूं।' कमरे मे अकेली शारदा देवी रह गई थीं। पति की बातें दिमाग में जैसे हथौड़े की तरह बज रही थीं। सहा न गया, दोनो हाथों से सिर थाम लिया। थोड़ी देर तक चुपचाप आत्मविश्लेषण करती रहीं। अतीत–वर्तमान–भविष्य की बातें उमड़ने लगी थीं। ऐसी विकट स्थिति से उबरने में उन्हें ज्यादा वक्त नहीं लगा। बड़े हल्के मन से वे कमरे से बाहर निकल गईं।

बरामदा और आंगन सूना पड़ा था। उन्होंने नौकर से न कहकर खुद ही चाय बनाने की सोची। किचेन का दरवाजा खोला और लाइट जलाई। फ्रिज से दूध निकाला और दो कप चाय बनाकर जैसे ही बाहर निकलीं कि पारूल अलसाई आंखों और साड़ी में लटपटाई सामने खड़ी बदहवास सी पूछ रही थी, 'मम्मी आप खुद चाय बना रही हैं ? सोहन दा को कहतीं या मुझे जगा दिया होता! इतनी जल्दी आप कैसे उठ गई ? तबीयत तो ठीक है न ?'

शारदा देवी की आंखे छलकतीं..... उसके पहले ये कहती हुई अपने कमरे में जाने लगीं, 'पारूल.... बस नींद उचट गई थी और चाय के बिना तो अपना सूरज निकलता नहीं.... तुम जाओ सो रहो। इतनी जल्दी उठ कर क्या करना है..... और हां. .... जन्मदिन मुबारक हो!' पारूल आगे बढ़ी और सास का चरण स्पर्श किया।

पहली बार शारदा देवी ने बहू को उसके नाम से पुकारा था। बालमुकंद जी ने सब देखा, सुना। चाय पी और अपने काम में लग गए। शारदा देवी ने चाय का कप सिंक में डाला और नहाने धोने चली गईं। तैयार होकर निकली तो सभी जग गए थे।

फिर तो उसके बाद खाने–पीने की जमकर तैयारी होने लगी। नाना व्यंजनों से टेबुल अंटा पड़ा था। बहू के मैके से सात–आठ लोग थे। अभिनव के कुछ दोस्त पत्नियों सहित मौजूद थे। बहू की चार–पांच सहेलियां थीं। स्पेशल आर्डर देकर

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1

अभिनव ने जन्मदिन का केक बनवाया था। 'हैप्पी बर्थडे' के साथ पारूल ने केक काटा और सर्वप्रथम पास खड़े सास–ससुर को एक–एक टुकड़ा बढ़ाया। शारदा देवी ने उसे प्यार से देखा और पगली.... कहती हुई केक उसके मुंह में रख दिया।

जमकर खाना पीना हुआ। उपहारों के ढेर लग गए थे। मेहमानों की विदाई होने लगी। तभी अभिनव के एक डाक्टर दोस्त की आवाज आई, 'क्या यार! कहीं तो हनीमून पर निकला नहीं ?' 'हनीमून की क्या जरूरत है। अपना शहर और अपना घर कौन सा बुरा है। सारा जीवन पड़ा है। चैन से घूमेंगे' अभिनव ने जवाब दिया।

प्रत्युत्तर में दोस्त कुछ कहता तब तक शारदा देवी बोल उठी 'बेटा तुम ही अभिनव के जाने का बंदोबस्त करा दो। इसे तो अपनी पढ़ाई और क्लीनिक से फुर्सत नहीं..... हाथ में टिकट रख दोगे तो चला ही जाएगा।'

'आप ठीक कहती हैं मां जी। मैं कल ही फटाफट कुछ व्यवस्था करता हूं। ट्रेन की टिकटें तो जल्दी मिलेंगी नहीं। मैं हवाई जहाज की टिकट कराए देता हूं। गर्मी का दिन है इसीलिए तू सीधे कुल्लू–मनाली चला जा..... बोल कितने दिन का प्रोग्राम रखूं ? पंद्रह–बीस दिन या पूरे एक महीने ?'

अभिनव आगे बढ़ा और शारदा देवी के दोनों हाथ थाम आश्चर्य मिश्रित स्वर में कह उठा, 'मैं मम्मी को छोड़कर भला इतने दिन बाहर रहूंगा ? ऐसे ही तो बात करने की फुरसत नहीं मिलती। जहां मेरी मम्मी हैं वही मेरे लिए सब कुछ है.... एक हफ्ता बहुत है। क्यों मम्मी इजाजत है न ?'

शारदा देवी को महसूस हुआ कि कहीं कुछ नहीं बदला था। टिकटें आई और सास ने बहू का सूटकेस सजाया। बस सलवार कुरते और नाईटी ही सजाये गये थे। उन ऊंची–नीची पहाड़ियों में छः गज की साड़ी का क्या काम! कहीं पैर उलझ गया तो ?

शारदा देवी के अंदर कुछ चिटकने लगा था। बेटा–बहू को आशीर्वाद देते हुए कह उठी 'अगर वहां अच्छा लगे तो छुट्टियां बढ़वा लेना...!'

तीन महीनों की संचित पीर पर्वत सी पिघलने लगी थी।

लघुकथाएं

याददाश्त

गांव छोड़े लगभग तीस साल हो गये थे, प्राथमिक पढ़ाई पूरी कर जो शहर आया तो पढ़ाई और नौकरी के चक्कर ने कभी गांव जाने का मौका ही नहीं दिया।

इस बार गर्मी की छुट्टी में गांव पहुंच ही गया। चाचा मुझे वही सैलून ले गये जहां बचपन में बाल बनवाया करता था।

देखो यह कौन आया है ? चाचा ने बुजुर्ग नाई की तरफ देखकर बोले। बाल काटने में व्यस्त नाई ने पलटकर देखा और मुस्कराकर बोले–अरे यह तो अपना वीरू है, कितना बड़ा हो गया है।

चाचा और मेरे साथ वहां उपस्थित समस्त लोग नाई जी की याददाश्त पर अचंभित हो गये।

विमल तिवारी
तिवारी निकुंज, धरमपुरा
जगदलपुर जिला–बस्तर
छ.ग.
फोन–07389335263

मूल्यांकन

हायर सेकेण्डरी एवं हाई स्कूल परीक्षा का केन्द्राध्यक्ष बनने पर मैंने परीक्षा केन्द्र में नकल पर कड़ाई से रोक लगा दी। छात्र, छात्राओं की गहन तालाशी के बाद ही उन्हें परीक्षा कक्ष में बैठने देता।

अंतिम दिन था परीक्षा का, अपनी वापसी की तैयारी कर रहा था। अपनी कड़ाई पर छात्र–छात्राओं की नाराजगी का भान हो रहा था। तभी चार–पांच छात्राएं मिलने आईं और उनमें से एक बोली–धन्यवाद सर! आपकी ईमानदारी के कारण ही गधे–घोड़ों के बीच अंतर स्थापित हो पायेगा। और हम सभी का सही मूल्यांकन होगा।

मैंने मन ही मन कहा– बच्चों आज तुम्हारा मूल्यांकन नहीं बल्कि मेरा मूल्यांकन हुआ है।

बस्तर पाति कहानी प्रतियोगिता–1, तृतीय पुरस्कार

प्रेम के रंग

मनजीत शर्मा 'मीरा'
1192–बी, सेक्टर
41–बी, चंडीगढ़
फोन–09914882239

उन दिनों मैं अपने प्रथम लघुकथा संग्रह की तैयारियों में जोर–शोर से जुटी हुई थी। घर के कार्य और कार्यालय जाने के साथ–साथ एक निश्चित समयावधि में मुझे लघु कथाएं लिखकर अकादमी में संग्रह के रूप में प्रकाशन हेतु जमा करानी थीं। दिन भर लघुकथा के आइडियाज़ सोचती, उन्हें लिखती और सुधारती। यूं तो मुझे टेलीविजन पर धारावाहिक देखने का बहुत शौक है पर उन दिनों मैंने अपने इस शौक को भी तिलांजली दे दी। फिर भी एक धारावाहिक ''देवों के देव महादेव'' मैं नियमित देखती थी। लघुकथा लिखने की प्रक्रिया के दौरान भी यदि इस धारावाहिक का वक्त होता तो मैं अपना लेखन अधूरा छोड़ देती। उस दिन एक विषय 'प्रेम के रंग' मुझे लेखन हेतु प्रेरित कर रहा था पर कुछ अति आवश्यक खरीददारी करनी थी तो पति उसी समय बाजार चलने की जिद करने लगे। मेरी लघुकथा अभी अधूरी थी और मुझे यह भी अनुमान था कि यदि अभी बाजार गई तो हो सकता है मेरा प्रिय धारावाहिक निकल जाए और हुआ भी यही। हां, एक फायदा जरूर हुआ कि अपनी लघुकथा 'प्रेम के रंग' के लिए कुछ अतिरिक्त सामग्री जरूर मिल गई। अधूरी लघुकथा का ताना–बाना मन में बुनते हुए मैंने खाना बनाया और यह सोचकर सो गई कि अब यह लघुकथा कल ही पूरी करूंगी।

तब ऐसा बिल्कुल नहीं लगा था कि यह स्वप्न है।

कैलाश पर्वत पर शिव ध्यान–मुद्रा में मग्न अधलेटे से बैठे थे और पार्वती उनके पैर दबा रही थीं।

''क्या सोच रहे हैं, स्वामी?'' पार्वती ने शिव से पूछा।

''सोच रहा हूं कि युगों–युगों से, जन्म–जन्मांतरों से तुम मुझे प्रेम करती हो। पृथ्वी लोक पर पति का प्रेम पाने के लिए पत्नियां तुम्हारी पूजा–अर्चना करती हैं। फिर भी पृथ्वी लोक पर पति–पत्नी के बीच प्रेम का इतना ह्रास क्यों होता जा रहा है? क्यों तुम्हारे भक्तों को अपनी पूजा का प्रतिफल नहीं मिल रहा?''

महादेव की इस बात से पार्वती चिढ़ गईं– ''आप यहां कैलाश पर बैठे–बैठे मेरे भक्तों की आलोचना मत करो। आपको कैसे पता कि पृथ्वी लोक पर पति–पत्नी के बीच प्रेम का ह्रास हो रहा है? जबकि मैं तो यह मानती हूं कि पृथ्वी लोक पहले से ज्यादा प्रेममय हो गया है। देवलोक में दूतों से जो सूचनाएं मुझे प्राप्त हो रही हैं, उसके अनुसार तो पृथ्वी लोक पर प्रेम में वृद्धि ही हुई है और साथ ही उसका प्रदर्शन भी। प्रेम के लिए जब कोई अपनी जान की आहुति दे दे तो यह प्रेम का सर्वोत्कृष्ट रूप है। पृथ्वी लोक पर अब प्रेम में ज्यादा आत्महत्याएं हो रही हैं।''

''आत्महत्या नहीं, इन्हें हत्या कहो देवी। जब एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को प्रेम में इतनी यातनाएं दे दे कि वह अपना जीवन ही समाप्त कर ले तो यह हत्या समान ही है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो प्रेम की हत्या है। मैं यह नहीं कहता कि पृथ्वी लोक पर प्रेम बिल्कुल समाप्त हो गया है परन्तु उतना भी नहीं है जितना कि तुम सोचती हो। जो दिखाई दे रहा है, वह तो प्रदर्शन मात्र है।''

''तो क्या सती के रूप में जब मैंने दाह किया था तब आप मुझसे प्रेम नहीं करते थे? वह आत्महत्या थी या..?'' पार्वती कुछ रूष्ट हो गईं।

''वह तो स्त्री–हठ था, देवी। मेरे प्रेम और विश्वास को आजमाने ही तो गई थीं तुम अपने पिता के घर।''

पार्वती से कुछ कहते ना बना। कुछ देर तक वे सोचती रहीं फिर जिद कर बैठीं– ''स्वामी, मैंने आज तक आपकी हर बात पर विश्वास किया है परन्तु इस बात पर मुझे संदेह है। मैं स्वयं इसे अपनी आंखों से देखना चाहूंगी...।''

शिव मुस्कुराए– ''चलो, अपनी आंखों से ही देख लो। याद करो एक बार पहले भी तुमने मेरी बात पर अविश्वास किया था और मां सीता का वेष धारण कर राम की परीक्षा लेने पहुंच गई थीं। तब भी तुम्हारी ही पराजय हुई थी।''

सोते में शायद मैंने करवट बदली होगी कि स्वप्न में दृश्य बदल गया। बाजार में कार में बैठी मैं अपने पति का इंतजार कर रही थी कि अचानक मुझे शिव–पार्वती दिखाई दे गए। बाजार की चहल–पहल में जब भीड़ ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई तो मैं समझ गई कि उन्हें सिर्फ मैं ही देख पा रही हूं। चारों तरफ प्रेम प्रदर्शन की कई झांकियां थीं। स्त्री–पुरूष, लड़के–लड़कियां बाहों में बाहें डाले अपने प्रेम का खुलकर इजहार कर रहे थे।

''फंस गए, महादेव...।'' मैं मन ही मन मुस्कुराई– ''इस बार आप नहीं जीतने वाले।''

तभी पार्वती ने एक जोड़े की तरफ इशारा किया– ''वो देखो, स्वामी...। वो लड़का उस लड़की से कितनी प्रेम भरी बातें कर रहा है। उन दोनों की आंखों में प्रेम का अथाह सागर हिलोरें मार रहा है। आपने लड़की को देखा महादेव? कितने प्यार से अपने हाथों से उसे आइसक्रीम खिला रही है। वैसे ही जैसे मैं अपने हाथों से आपको भोजन कराती हूं...।'' पार्वती चहक उठीं।

शिव रहस्यमयता से मुस्कुराए और उन्होंने दूसरी तरफ इशारा किया– ''इनके बारे में तुम्हारा क्या कहना है, देवी?''

''महादेव, यह तो नव–विवाहित दम्पत्ति हैं। दोनों कितने सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। देखो, अब उस युवक ने अपनी पत्नी के कंधे पर हाथ रख दिया है। दोनों प्रेम में इतने मग्न हैं कि उन्हें उस ठेले वाले की आवाज भी सुनाई नहीं दे रही। और...रूको स्वामी, देख तो लो वह नवविवाहिता अपने मेंहदी लगे हाथों से कितने प्रेम से अपने पति के मुंह में पहला कौर डाल रही है।'' पार्वती ने विजयी मुद्रा में कहा।

''अभी तो प्रेम के बहुत से रंग देखने हैं, देवी।''

टहलते–टहलते शिव–पार्वती मेरी कार के समीप आ गए तो मैंने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया।

''इसे देखो...।'' शिव बोले।

पार्वती असमंजस में पड़ गईं– ''यह तो अकेली है। इसका प्रेमी कहां है?''

''प्रेमी नहीं, पति कहो देवी। वह इसके लिए जन्मदिन का उपहार लेने गया है और इसे नहीं पता। यह तो अपने लेखन कार्य में इतनी डूबी रही कि अपना जन्मदिन तक भूल गई। अपने पति पर नाराज यह बैठी तो यहां है पर इसका मन–मस्तिष्क मुझमें ही अटका हुआ है।''

''आप में स्वामी? वह कैसे? क्या ये आपकी परम भक्त है?'' पार्वती ने जिज्ञासावश पूछा।

''ऐसा ही समझ लो, देवी। अभी भी इसका सारा ध्यान टी.वी पर ही लगा हुआ है कि महादेव निकल जाएंगे।''

''और आपने तो इसे साक्षात दर्शन दे दिए। धन्य हैं प्रभु आप।'' पार्वती हंसी।

''इनके प्रेम के बारे में तुमने कोई टिप्पणी नहीं की।'' शिव ने पार्वती की ओर देखकर पूछा तो पार्वती कुछ नहीं बोलीं क्योंकि उनके मन में तो अभी भी प्रेम के पहले दो दृश्य ही चल रहे थे।

''इतना काफी है, प्रभु। अब लौट चलते हैं।'' पार्वती के चेहरे पर एक विजयी मुस्कान उभरी।

अचानक शिव ठिठक गए– ''वो देखो, देवी।'' उन्होंने फुटपाथ की ओर इशारा किया।

पार्वती ने देखा कि फुटपाथ पर एक औरत भुट्टे भून रही थी। उसका पति जल्दी–जल्दी भुट्टों के छिलके उतार–उतार कर डलिया में रखता जा रहा था। औरत एक हाथ से कोयलों को पंखा झलती जल्दी–जल्दी भुट्टे सेंक रही थी ताकि सामने खड़े ग्राहकों को निपटा सके। कोयलों की आंच से छलक आए पसीने को वह बीच–बीच में अपनी सूती साड़ी के पल्लू से पोंछती भी जा रही थी। उसे ऐसा करते देख पति पानी का गिलास भरकर ले आया। भुट्टे वाली ने तृप्त होकर पानी पीया और एक मीठी नजर अपने पति पर डाली।

''क्या यह भी प्रेम है? यह दृश्य आपने मुझे क्यों दिखाया? ये दोनों तो अपनी रोजी–रोटी कमाने में इतने व्यस्त हैं कि प्रेम के लिए इनके पास शब्द और समय ही नहीं हैं।'' असमंजस में भर पार्वती बोलीं।

शिव ठहाका लगाकर हंस पड़े– ''प्रेम एक बहुत ही गूढ़ भावना है। यह प्रदर्शन की वस्तु नहीं।''

''लेकिन प्रभु, मन और आत्मा में प्रेम हो और उसे बताया ना जाए, उसका प्रदर्शन ना किया जाए तो एक–दूसरे को पता कैसे चलेगा कि वे आपस में कितना प्रेम करते हैं।''

''अच्छा ये बताओ, अभी हमने जो चारों दृश्य देखे, उनमें सर्वाधिक प्रेम किस जोड़े के बीच था?'' शिव ने उल्टा प्रति प्रश्न कर दिया।

''मुझे तो उस लड़के और लड़की के बीच सर्वाधिक प्रेम नजर आया। उनका प्रेम तो वहां आसपास खड़े लोग भी महसूस कर रहे थे।'' पार्वती ने समर्थन हेतु शिव की ओर ताका।

''गलत हो तुम।'' शिव बोले– ''दरअसल इन चारों जोड़ों में पहले दो जोड़ों में तो प्रेम था ही नहीं। वह लड़का अपनी मंगेतर से झूठ बोलकर आया था और लड़की सुबह अपने किसी दूसरे ब्वाय–फ्रैन्ड के साथ थी। दूसरे जोड़े में उस नव विवाहिता ने सिर्फ पैसे के लिए अपने बॉस से शादी की है और युवक ने भी अपनी पहली पत्नी को तलाक दिए बिना धोखे में रखकर उससे दूसरे शादी कर ली। तीसरे जोड़े में प्रेम से ज्यादा कर्त्तव्य की भावना है क्योंकि पिछले जन्मदिन पर जब पति उपहार लाना भूल गया था तो पत्नी कई दिन तक उससे नाराज रही थी। इन चारों जोड़ों में यदि सच्चा प्रेम है तो उन पति–पत्नी

के बीच है जो भुट्टे बेच रहे थे।''

''आप तो पृथ्वी लोक की भाषा बोलने लगे, प्रभु। मान लिया आपके पास दिव्य–दृष्टि है लेकिन आपको यह साबित करना होगा कि सर्वाधिक प्रेम चौथे जोड़े में ही है।''

''पृथ्वी लोक पर आकर तो तुम भी मेरी बातों पर संदेह करने लगीं, देवी। तुम मुझसे प्रेम करती हो ना, तो प्रेम की पहली शर्त ही विश्वास है। मैंने अपनी दिव्य दृष्टि से ही यह जाना है कि पहली दोनों जोड़ियां प्रेम नहीं बल्कि प्रेम का स्वांग कर रही थीं। उनके प्रेम–प्रदर्शन ने तो तुम्हें भी भ्रमित कर दिया। जहां तक चौथे जोड़े के प्रेम की गहराई की बात है तो इसके विस्तृत विवरण में पड़कर तुम इसे पुराण मत बनाओ, लघुकथा ही रहने दो।''

देवों के देव महादेव ने मुस्कराकर एक स्नेह भरी दृष्टि मुझ पर डाली और पार्वती को लेकर अन्तर्ध्यान हो गए।

काव्य

मेरा शहर

सुबह देखता हूं
शाम देखता हूं
पुराने शहर का नया मंजर देखता हूं।
मिला करते थे जो कभी
मुस्कराकर गले
उन्ही हाथों में छिपे खंजर देखता हूं।
हाईवे का जामा पहने
कीचड़ भरी सड़कें
जमीनों को लीलते
इस्पाती इरादे
कभी जहां खेला था कंचा
रौशनी सी नहाई
नवयौवना सी उन गलियों में
अपनी कहानी की छुअन देखता हूं।
सुबह देखता हूं
शाम देखता हूं
पुराने शहर का नया मंजर देखता हूं।
लोगों की प्यास बुझाता
नदी का किनारा
वे मादक हवाएं
जो चूमा करती थीं
पनिहारियों की गोरी पिण्डलियां
उन हवाओं में अब
जहर ही जहर देखता हूं।
सुबह देखता हूं
शाम देखता हूं
पुराने शहर का नया मंजर देखता हूं।
सिर झुकाए
बापू के प्रिय भजन सुने
मुनाफे का चुइंगम चबाते
लोगों के मौन आध्यात्म का दैनिक अभ्यास
उन बंद आंखों में सोखे हुए उजालों को
नींद से जगाता हूं
पूछता हूं
एक मासूम सवाल–
शाम ढले
टूटी–फूटी झोपड़ियों से निकलती
मादर की थाप और
तुड़बुड़ी की टुक–टुक से
सुर–तार–लय मिलाती
किशोरियों की आवाज वो मिठास
वो प्यार भरा निवेदन
कि 'आसा हो बाली फूल, बिहा घरे जीबू'
कहां है ?
कहां है ?
सुबह के
ताजे टपके महुए बटोरते
और
कीचड़ में हरियाली बुनते वो हाथ
झुरमुट की छांव में
पसीने सुखाती वह पीठ
खामोशी भरे तुम्हारे उत्तर में
तुम्हारा अभिनय अच्छा है,
बिल्कुल सच्चा है
क्योंकि
तुम्हारे सामने व्यवस्था का सिपाही
बंदूक लिए बैठा है
समय के गाल पर रूके हुए आंसू
हरियाली को चिढ़ाते
ये
कैक्टस; क्यों उगते हैं इन वादियों में
सूरत चाहे जो भी हो
खोट नीयत में देखता हूं।
रोशनी को तरसती
इन आंखों से
इस शहर को बंजर देखता हूं।
सुबह देखता हूं
शाम देखता हूं
पुराने शहर का नया मंजर देखता हूं।

सुनील श्रीवास्तव
10–वर्गीस कॉलोनी,
सुप्रिमा, धरमपुरा रोड
जगदलपुर जिला–बस्तर
छ.ग.
फोन–09425599858

परिचय : नसीम आलम 'नारवी'

ये तेवर ग़ज़ल के देख ज़रा...

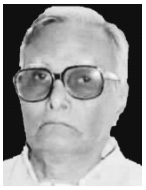

प्रभाकर चौबे
भिलाई
छ.ग.
फोन–09425513356

अगर साहित्यकार एक्टिविस्ट भी है तो समाज में उसके साहित्य पर कम उसकी सामाजिक सक्रियता पर ज्यादा चर्चा होती है। समाज का ध्यान उसके एक्टिविज्म की ओर रहता है और साहित्य या कहें उसका लेखन दबा–सा रहता है। हमारे मित्र ट्रेडयूनियन लीडर, शायर नसीम आलम नारवी के साथ यही हुआ। हुआ क्या खुद लेखक (नारवी जी) ने लेखन के स्थान पर सामाजिक सरोकार को वरीयता दी। उन्हें लगा कि दो कविता कम लिखूं तो चलेगा, मैं नहीं कोई और लिख लेगा लेकिन इस समय मजदूरों के साथ होना ज्यादा जरूरी है। और नारवी जी शायद कई मर्तबा ग़ज़ल लिखना स्थगित कर मजदूर आंदोलन का नेतृत्व करने चल पड़े हों, मजदूरों की लड़ाई स्थगित नहीं की जा सकती। इस तरह विचारों के प्रति प्रतिबद्ध और समर्पित व्यक्ति लेखन को ही स्थगित नहीं करता, उसके प्रकाशन को भी स्थगित करते चलता है।

उसके साहित्य से, कविताओं, ग़ज़लों से वह वर्ग तो परिचत होता है जिनके साथ संघर्ष करता है लेकिन प्रकाश में न आने के कारण जिसे साहित्य समाज या विद्वत समाज कहते हैं, जो आपेनियन मेकर होते हैं और समीक्षकों को प्रभावित करते हैं, राय बनाने को प्रभावित करते हैं, राय बनाने में सिद्धहस्त होते हैं, वह विशिष्ट समाज ऐसे साहित्यकारों के लेखन से अपरिचित–सा होता है और ऐसे एक्टिविस्ट साहित्यकार के लेखन को साहित्य के पन्नों पर स्थान देने में बेहद संकोची होता है। यहां तक कि उसे साहित्यकार के रूप में मान्यता देने की तो बात अलग साहित्य में उसकी चर्चा करने से परहेज किया जाता है। ऐसे समीक्षकों को लगता है कि इनकी चर्चा करने से पवित्र साहित्य बिटल जाएगा।

अपनी धुन के पक्के, विचारों के प्रतिबद्ध नसीम आलम नारवी ने लेखन को गम्भीरता से लिया उतनी ही गम्भीरता से जितनी गम्भीरता से मजदूर आंदोलन को लिया। वे लिखते रहे। छत्तीसगढ़ अंचल में ट्रेड यूनियन मूवहमेंट में नसीम आलम नारवी प्रेरणादायी नाम है और लेखक बिरादरी तथा मजदूर वर्ग, मजदूर नेताओं के बीच उनके लेखन को पूरा सम्मान प्राप्त है।

नसीम आलम नारवी की ग़ज़लों में नारेबाजी नहीं है। मजदूर आंदोलन से जुड़े रहे इसलिए नारे ही लेखन बनें, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। समाज की समीक्षा है, ग़ज़लों में प्यार है, रिश्तों की गर्माहट पर भाव–अभव्यक्ति है, दोस्ती की ख़्वाहिश और अकेलेपन का दर्द भी है। सामूहिकता की ताकत का विश्वास है तो संघर्ष के प्रति सम्मान भाव है–

'रहेगा क्या कोई मैआर अपनी इज़्ज़त का भरेंगे पेट जो मांगे की रोटियां लेकर।।'

संघर्ष और संघर्ष के रास्ते पर चलना है–

'नसीम' निचले न बैठो / क़दम बढ़ाये चलो
तुम्हें तो आना है इक / सुब्हे कामरां लेकर

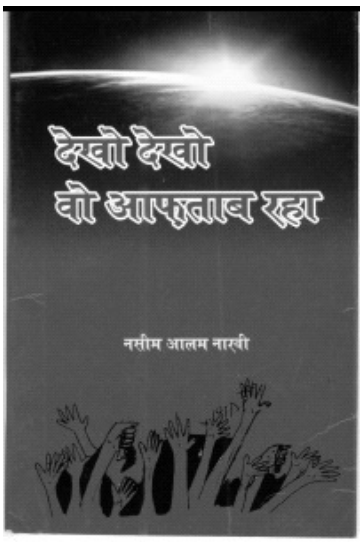

प्रगतिशील लेखक संघ की गोष्ठियों, रचनाशिविरों में इसे लेकर चर्चा चलती कि नसीम भाई का संग्रह आना चाहिए। विचारों के प्रति प्रतिबद्ध लेखक संगठनों में, विशेषकर प्रलेस में लेखक बिरादरी के प्रति सामूहिक चेतना का उदय और विकास लेखक गोष्ठियों और शिविरों में एक प्रक्रिया के तहत होने लगता है। छत्तीसगढ़ प्रगतिशील लेखक संघ ने चेतना के तहत जनकवि स्व.भगवती सेन (धमतरी) का संग्रह प्रकाशित किया। भिलाई इकाई ने साथियों का कहानी संग्रह 'फौलाद ढालते हाथों के दिन' तथा काव्य संग्रह 'हाथों के दिन' का प्रकाशन किया। राजनांदगांव इकाई ने जनकवि चंदूलाल चोटिया की कविताएं प्रकाशित की। बिलासपुर में 2012 में प्रलेस का राज्य सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में नसीम आलम नारवी की सबने याद की। उनके संग्रह की बात भी उठी और तय किया गया कि उनका संग्रह छत्तीसगढ़ प्रलेस प्रकाशित करे। इसी निर्णय का परिणाम यह संग्रह है। एक और बात, नसीम आलम नारवी भाषा के सवाल पर दृढ़ता से मत रखते रहे हैं और इस प्रश्न पर हरिशंकर परसाई के साथ उनका पत्र–व्यवहार हुआ जो चर्चित रहा, भाषा के सवाल पर वे परसाई से भिड़ गये।

नसीम आलम नारवी को संग्रह प्रकाशन पर बधाई।

देखो देखो आफ़ताब रहा

लोकबाबू
311, लक्ष्मीनगर
रिसाली, भिलाई नगर
छ.ग.
पिन–490006
फोन–09977030637

भिलाई इस्पात संयत्र को कच्चा लोहा उपलब्ध कराने वाली खदानों से घिरी हुई एक छोटी–सी नगरी है। पहली बार सुनने वाले को यह 'दिल्ली शाहदरा' का भ्रम देती है। प्रदेश के नक्शे पर यह नगरी भले ही छोटी हो, किन्तु मजदूर–आंदोलनों ने इसे बहुत शोहरत दी। मान्यता प्राप्त यूनियन एस.के.एम.एस. और शंकर गुहा नियोगी के मुक्ति मोर्चा ने कभी प्रदेश और देश को भी आन्दोलित कर रखा था। तब एस.के.एम.एस. की कुछ कार्यावधि के लिए सेक्रेटरी हुआ करते थे–आदरणीय नसीम आलम नारवी जी।

एक तो मजदूर नेता और दूसरे शायर। दोनों ही शौक ऐसे कि परिवार को आर्थिक और सामाजिक मोर्चे पर यह संदेश देते से लगते–हमारे भरोसे मत रहना।....अब परिवार अपने मुखिया पर भरोसा न रखे, उस पर आश्रित न हो तो क्या करे! सो भरोसा किया और दुख भी उठाया। मगर आन्तरिक खुशी का संबल था कि दूसरों के और बहुतों के काम आ रहे हैं। इसी ख़ुशी ने मुंह से कभी 'उफ' न निकलने दिया।

मंझोले क़द काठी के। थोड़े गोल मटोल। गेहूंआ रंग, तीखा तेज़ मिज़ाज। पल में मुगले–आजमी ठहाके, पल में गुरूदत्त–सी गम्भीरता। क़िस्सागोई के अंदाज़ में, किन्तु नफ़ासत से खरी–खरी कहने का माद्दा रखने वाले। नसीम आलम नारवी जब चलते हैं तो लगता है जैसे क़दम गिन–गिन कर चल रहे हों।...जान ले मुझे, जो न जानता हो, नाम मेरा नसीम आलम है।...हमेशा सचेत....क़दम कहीं ज़्यादा या कम तो नहीं हो गये। संगठन में कभी मत विभाजन का अवसर भी आता तो देखा जाता कि नारवी जी किधर हैं। फ़र्क़ तो पड़ता ही रहा।

यूं तो आपके जीवन में अनेक शहरों का साथ रहा। कामठी, कानपुर, नागपुर, चन्द्रपुर, वारसा, इलाहाबाद, राजनांदगांव आदि। कहना चाहिए घाट–घाट का पानी पिया। इसी पानी ने आपकी दृष्टि को विस्तार दिया। विचारों को मजबूती दी। यह दूसरी बात है कि इस मजबूती का ज़्यादा हिस्सा श्रमिक–यूनियन को गया और शायरी को कम। यूनियन के लिए आप नसीम आलम नारवी बने रहे और शायरी में 'नसीम' नारवी।

इलाहाबाद ज़िले की एक तहसील है–सिराथु। इसी सिराथु के एक कस्बे का नाम जाने कैसे 'नारा' पड़ गया। इसी नारा में आपका जन्म हुआ 4 मार्च 1938 को। जन्मभूमि से प्रत्येक को गहरा लगाव तो रहता ही है। आपको भी रहा। और जब शायरी में आये तो उपनाम 'नारवी' चल पड़ा। स्थायीत्व की खोज में पंइया–पंइया चलता हुआ यही 'नारवी' आकर लौह–खदान की इसी नगरी में ठहर गया। इस नगरी में आपको आत्मसात कर लिया या आपने इस नगरी को, कहना मुश्किल है।

1958, बीस साल की उम्र से ही आप वामपंथी आन्दोलन से जुड़ गये थे। महाराष्ट्र में वामपंथी नेता श्री ए.बी.वर्धन के कार्यक्षेत्र में उनसे सम्पर्क रहा। दो साल डटकर काम भी किया, मगर नौकरी धन्धा तो कुछ था नहीं। शादी, परिवार, बच्चे. ...ज़िम्मेदारी आगे आने वाली थी। सो, रोज़गार की खोज में निकल पड़े। महाराष्ट्र से मध्यप्रदेश (अब छत्तीसगढ़) की ओर। राजनांदगांव में चाचाजी थे। एक साल उनके पास गुज़ारा। काम की तलाश की, पर बात नहीं बनी। वहीं रहते उन्हें इस लौह नगरी में नौकरी की गुंजाइश दिखाई दी। यहां चले आये। कुछ समय यहां के प्रमुख व्यवसायी स्व.मनोहर जैन के पास प्रायवेट नौकरी की। फिर भिलाई इस्पात संयंत्र की इसी लौह खदानों की नगरी के लिए पक्की नौकरी का बुलावा आ गया। समझिये, मुंह मांगी मुराद पूरी हो गयी।

फिर क्या था, नौकरी के घंटो के बाद ज़्यादातर वक़्त श्रमिक यूनियन और वामपंथी कार्यक्रमों के लिए गुज़रने लगा। सक्रियता और उत्साह इतना कि बाद के वर्षों में नौकरी में नौ साल निष्कासन के भी काटे। मगर निराशा को ख़ुद पर हावी नहीं होने दिया। वह समय इस नगरी का स्वर्णिम काल था। तब इस नगरी की आबादी भी बहुत थी। कर्मचारी भी बहुत थे। इधर अब तो यहां की खदानों से लोहा चुकने लगा है। संयंत्र ने भी थोड़ी कन्नी काटनी शुरू कर दी। कर्मचारियों की संख्या कम होने लगी। तब जैसी रौनक़ अब इस नगरी की नहीं रही। बहुतों ने इस नगरी को इच्छा या अनिच्छा से छोड़ दिया। पर 'नसीम' नारवी जी कहीं नहीं गये। 1996 को रिटायर भी हो गये, मगर इस नगरी का नेह नारवी जी से न छूटा।

मूक रह कर सब सहन करती जीवन–संगिनी के साथ इस नगरी में अपना एक छोटा–सा घर होने का सपना देखा था। बहुत किराये के मकान में रह लिए थे। अब मकान तो किसी तरह बन गया, मगर 1994 में जीवन–संगिनी गुजर गयी। वह जीवन–संगिनी जिसने जनमते ही एक के बाद एक पांच संतानों को दुनिया से वापस लौटते देखा था। बस एक बेटा बचा

रह गया किसी तरह। ख़ुर्शीद नाम है उसका। बिल्कुल पिता का हमशक्ल। ख़ुर्शीद और उसका नन्हा–सा परिवार ही अब आपका सहारा है। ख़ुर्शीद भी अपने अब्बा की देखभाल क लिए श्रवण की तरह समर्पित है। मगर विडम्बना यह कि उसे भी 40 की उम्र में अब जाकर एक प्रायवेट स्कूल में काम मिला है।

आपके पिता श्री स्व.हुसैन आलम नारवी स्वयं शायर थे। उन्हीं के दिशा निर्देशन में 18 साल की उम्र से ही आपने शायरी का अभ्यास शुरू किया। कालान्तर में कामठी के शायर स्व.हाफ़िज़ अनवर कामठी और छत्तीसगढ़ अंचल के उस्ताद शायर सलीम अहमद 'जख़्मी' बालोदवी से शायरी में मार्गदर्शन लेते रहे। लेकिन, जैसा कि आपने अपनी दिनचर्या नौकरी और यूनियन को आधार बनाकर व्यस्त कर डाली थी, साहित्य–सृजन के लिए पर्याप्त समय लिखने–पढ़ने का नहीं निकाल पाया। यह भी एक कारण हो सकता है कि इस छोटी–सी नगरी में शायरी का माकूल वातावरण न मिला हो। जो भी हो, आपका बहुत कम लेखन सामने आया इसके बावजूद आप आसपास के नगरों में आयोजित मुशायरों में कभी–कभी शिरकत कर लिया करते। आकाशवाणी रायपुर और भोपाल द्वारा आयोजित अनेक मुशायरों और कवि सम्मेलनों में आपने अंचल और देश के प्रसिद्ध नामचीन शायरों और कवियों क साथ अपनी ग़ज़लों का पाठ किया। अनेक हिन्दी–उर्दू पत्र–पत्रिकाओं में आपकी रचनाएं प्रकाशित हुई। फिर भी वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य में नये लोगों के बीच आप अनजाने से हो गये हैं। आपकी कोई किताब नहीं छपी जो लोगों के हाथों तक पहुंचती।

नौकरी के शुरूआती चार साल मैंने इसी नगरी में गुजारे। मुझे याद है, 'नसीम' नारवी जी और उनके ही निकट मित्रों (डॉ. आनन्द नारायण दसानी, श्री जगन्नाथसिंह, स्व. लोकेन्द्र यादव आदि) के सहयोग और भरोसे से ही हमने यहां प्रगतिशील लेखक संघ की इकाई गठित की थी। 1982 में हमने यहां प्रलेस का सम्भागीय अधिवेशन भी आयोजित किया था, जिसमें छत्तीसगढ़ अंचल के नामचीन लेखकों की भागीदारी थी। यह तब अविभाजित दुर्ग ज़िले का प्रलेस का पहला बड़ा आयोजन था। बाद में आपके मिलकर हमने यहां 'इप्टा' और 'इक्कस' की इकाइयां भी गठित की थीं। उन दिनों की सक्रियता और उत्साह का स्मरण कर आज भी रोमांच होता है। 'नसीम' नारवी जी कहते हैं संगठन में युवा लोगों को जोड़कर फिर उन्हीं दिनों को वापस लाया जा सकता है।

छत्तीसगढ़ प्रगतिशील लेखक संघ और इसके पूर्व महासचिव श्री प्रभाकर चौबे के प्रयासों से 'नसीम' नारवी जी की ग़ज़लों का यह संग्रह आज आपके हाथों तक पहुंचा है। मार्च 2016 में बिलासपुर में आयोजित प्रलेस के तीसरे राज्य सम्मेलन के दौरान जब संगठन की ओर से अपने वरिष्ठ और सम्मानीय सदस्यों के अभिन्दन की बात आयी तो यक–ब–यक नसीम आम नारवी जी का ख़्याल बहुतों के ज़ेहन में आया। यह कमी खलने लगी कि आपकी एक भी किताब नहीं छपी है। तय किया गया कि क्यों न संगठन और साथियों के सहयोग से यही कर लिया जाये।

इधर जीवन के उत्तरार्द्ध में 'नसीम' नारवी जी की आंखों ने भी साथ देना छोड़ दिया। मगर अब भी आपकी जुबान में वही खनक वही बानगी शेष है। सम्हलकर, सहारे–सहारे चलते हुए भी वही क़दम–क़दम का हिसाब बाक़ी है। औरों की सहायता लेना, अपनी 'असहाय' हालत का प्रकट करना, आपका कभी पसंद न रहा। आप स्वयं उम्रभर लोगों का होम्योपेथी की दवा से मुफ़्त इलाज करते रहे। दूसरों की मदद ही आपके जीवन का लक्ष्य रहा। आज अपनी 'असहाय' हालत पर उन्हें ज़रा रंज भी है। मगर अब भी एक लौ भीतर कहीं टिमटिमा रही है, आश्वस्त करती –सी कि जो बिगड़ना था, बिगड़ गया और अब जो कहीं कुछ होता ही है तो वह अच्छा ही होगा। आपकी ही ये पंक्तियां हैं–

मैं बिल्कुल खुली किताब रहा / उनको पढ़ने से इज़्तिनाब रहा।
अब अंधेरों की फिक्र कैसी 'नसीम' / देखो–देखो वो आफ़ताब रहा।।

ग़ज़ल–3

उनसे किसे उम्मीदे–वफा है।
पत्थर में कब फूल खिला है।।

सीने में फिर दर्द उठा है,
शायद तुम ने याद किया है।।

चारागरी के दावे हैं उनको,
जिनके हाथों दर्द मिला है।।

ग़ैर पे क्या इल्ज़ाम लगाएं,
अपनों का सब किया धरा है।।

उनका करम है उनकी इनायत,
शाद किया, नाशाद किया है।।

किसने कहा था मानो दिल की,
क्यों रोते हो ग़म जो मिला है।।

सब को पड़ी है अपनी–अपनी,
किसने किस का साथ दिया है।।

फूट रही है सुब्ह 'नसीम' अब
रात का जादू टूट रहा है।।

नारवी

ग़ज़ल–2

क़िस्सा–ए–दर्द सरे बज़्म सुना भी न सकूं।
आ पड़ी है मगर ऐसी कि छुपा भी न सकूं।।
ज़ख़्म दिखला न सकूं दर्द छुपा भी न सकूं,
चोट खाई है कुछ ऐसी कि बता भी न सकूं।।
अल्लाह अल्लाह तजल्ली की कशिश हुस्न का रोब,
दीद को मरता रहूं आंख उठा भी न सकूं।।
इस पसोपश का अंजाम खुदा ही जाने,
वह आने से रहे और मैं जा भी न सकूं।।
जानलेवा है तसौवर भी तग़ाफूल का तेरे,
और मायूस नहीं हूं कि मना भी न सकूं।।
हुस्ने–दस्तूर भी पासे–वफा भी है 'नसीम'
सुबह का साथ है ऐसा कि छुड़ा भी न सकूं।

ग़ज़ल–3

आने वाला कल लेकर जो किताब आयेगा।
उसमें एक नई दुनिया का निसाब आयेगा।।
रास्ते के पेचोख़म गिन के क्या करेंगे हम,
पुख़्ता है यक़ी हमदम इन्क़लाब आयेगा।।
रात काटने वालों सुर्ख़ है उफ़क़ देखो,
चीर कर अंधेरों को आफ़ताब आयेगा।।
लुटने वाले तोड़ेंगे लूट की जहांगीरी,
वक़्त का तक़ाज़ा है इन्क़लाब आयेगा।।
आओ कल की राहों को इस तरह संवारे हम,
आम आदमी जिस पर कामियाब आयेगा।।
अपना ख़ून देकर भी जिस को सींचा है,
कल इसी गुलिस्ता पर फिर शबाब आयेगा।।
ऐ 'नसीम' उफ़क़ पर सुर्ख़ियां उभरती हैं,
चलिए ख़ैर मक़दम को इन्क़लाब आयेगा।।

ग़ज़ल–4

ग़रज़ के घेरों से बाहर निकल के देख ज़रा।
वफ़ा के प्यार के सांचे में ढल के देख ज़रा।।
बस अपने आप को पहचान आसरे मत ढूंढ,
ज़माना साथ में आएगा चल के देख ज़रा।।
न कर मलाल अगर लड़खड़ा गए क़दम,
पहुंच में है अभी मंजिल संभल के देख ज़रा।।
तक़ाज़ा वक़्त का है तर्क कर ये नर्म रवी,
फ़तह क़रीब है तेवर बदल के देख ज़रा।।
हयात बख़्श चराग़ों की लौ न हो मद्धम,
कि बढ़ते आते हैं साए अज़ल के देख ज़रा।।
यूं आस्तीन के पाले न पिंड छोड़ेंगे,
अब उनको पांव के नीचे कुचल के देख ज़रा।।
अज़ल से नूरे–सहर है 'नसीम' का हमदम,
ये हुस्ने–फिक्र, ये तेवर ग़ज़ल के देख ज़रा।।

ग़ज़ल–5

सफ़र ये ता–हदे मंज़िल चले चले न चले।
न जाने शाख़े–तमन्ना फले, फले न फले।।
अलमकदा तो मुन्नवर तुम्हारी याद से है,
चिराग़ मेरी बला से जले, जले न जले।।
फिर आये, आये न आये ये सांस कौन कहे,
भरोसा क्या कोई इसका चले, चले न चले।।
उसे तुम्हारा जहां रास आया खूब हुआ,
ख़ुशी हमारी गली में पले, पले न पले।।
जो हाथ आ गई थोड़ी खुशी भी कम तो नहीं,
ये दौर और ज़ियादा चले, चले न चले।।
सुरूरे सुबह तो अपनी जगह अटल है 'नसीम',
अलम की शाम का क्या है टले, टले न टले।।

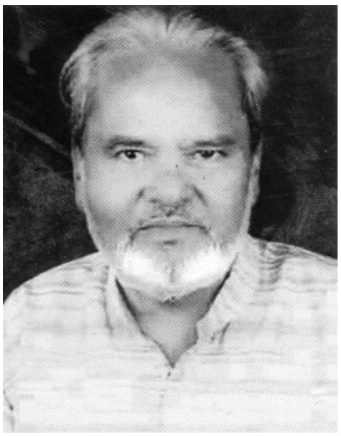

ग़ज़ल–6

एक बुत की मुहब्बत मेरा ईमान हुआ।
लो काफ़िर इश्क़ आज मुसलमान हुआ।।
क्यों इश्क़ की रूसवाई का सामान हुआ है,
क्या बात है क्यों हुस्न मेहरबान हुआ है।।
अंगड़ाईयां लेने लगी है बर्क़ फलक पर,
तामीरे–नशेमन का जो सामान हुआ।।
जैस किसी बेरंग गुलिस्तां में बहारें,
यूं दिल में हमारे काई मेहमान हुआ है।।
अल्लाहरे इज़हार की जुरअत तेरे आगे,
मुश्किल था यही काम जो आसान हुआ है।।
सरगश्ता ही कहिए कि मुहब्बत में 'नसीम' आज,
तैयार लुटाने को दिलो–जान हुआ है।।

ग़ज़ल–7

दिन अलग काटते हैं रात अलग।
पर नहीं होती ग़म की बात अलग।।
आप का बस चले तो कर देखें,
हम से ग़म और हादसात अलग।।
खेल कुदरत के हैं जुदागाना,
आदमी की ख़्वाहिशात अलग।।
कोई इलज़ाम उन पे कब आया,
मानी जाती है उनकी बात अलग।।
कारनामा है इब्ने आदम का,
आदमी आदमी की जात अलग।।
सारी दुनिया अमन की ख़्वाहां है,
जंगबाजों की कायनात अलग।।
सुब्हे राहत भी आ रहेगी 'नसीम',
जाने वाली है ग़म की रात अलग।।

बातचीत : नसीम आलम 'नारवी'

बस्तर पाति–किसी 'पहुंच' वाले को साहित्यिक कार्यक्रम की आसंदी देना कहां तक उचित है?
नारवी जी–कोई औचित्य नहीं है। आयोजन हेतु पैसों की सहायता हो जाती है तथा जन की उपस्थिति बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं।
बस्तर पाति–व्यवहार में और रचित साहित्य में कितने प्रतिशत का अंतर जायज है?
नारवी जी–व्यवहार, देश, काल, परिस्थिति पर निर्भर करता है। यह कोई गणित का सवाल नहीं है।
बस्तर पाति–किसी भी साहित्यिक पत्रिका के संपादक की योग्यता क्या होनी चाहिए?
नारवी जी–साहित्यिक पत्रिका के संपादक की योग्यता (1) देश, काल और परिस्थिति का बोध होना आवश्यक है। (2) कोई विद्यालयीन मापदंड निर्धारित नहीं किया जा सकता है।
बस्तर पाति–साहित्यकार होने के लिए व्यक्ति को कितना पढ़ा–लिखा होना चाहिए?
नारवी जी–कोई मापदंड निर्धारित नहीं है।
बस्तर पाति–साहित्यिक सफलता के मायने क्या होते हैं?
नारवी जी–सामान्यतः पाठकों में लोकप्रियता को साहित्यिक सफलता माना जा सकता है। साहित्यकार अपना मंतव्य पाठकों तक पहुंचाने में सफल हो तभी साहित्यिक सफलता मानी जा सकती है।
बस्तर पाति–साहित्यकार अपने जीवन में क्या करता है और वह क्या रचता है, क्या दोनों में तारतम्य होना जरूरी है?
नारवी जी–साहित्यकार अपने जीवन में जीवन की वास्तविकताओं का अनुभव करता है, अनुभव पर आधारित अपने विचार और दिशा–निर्देश अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के बीच पहुंचाता है। दोनों में तारतम्य अनिवार्य है। जैसे रिश्वत देना या लेना जुर्म है परन्तु साहित्यकार या अन्य कोई भी क्या इस सच्चाई को अपने जीवन में शत–प्रतिशत लागू कर पाता है ?
बस्तर पाति–हास्य और व्यंग्य में क्या अंतर होता है ?
नारवी जी–हास्य मनोरंजन मात्र है। व्यंग्य में विनोद के साथ–साथ शिक्षा और दिशा–निर्देश भी होता है।
बस्तर पाति–संपादकीय के विषय क्या होने चाहिए, समसामायिक घटनाएं, साहित्य से संबंधित या फिर सामाजिक समस्याओं पर?
नारवी जी–समसामायिक घटनाएं और समाज से उसका सरोकार।
बस्तर पाति–किसी भी पत्रिका में छपने के लिए रचनाएं भेजना कहां तक उचित है?
नारवी जी–मेरे विचार में रचनाएं सम्प्रेषण के लिए होती हैं और सम्प्रेषण का माध्यम प्रकाशन भी है। इसलिए रचनाओं को छपने भेजना उचित है।
बस्तर पाति–साहित्यिक परिदृश्य में आने का षहरों में रहने वाले साहित्यकारों को ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले साहित्यकारों से ज्यादा मौका मिलता है, क्या यह सच है?
नारवी जी–हां, सच है।
बस्तर पाति–वर्तमान व्यंग्य रचनाएं हास्य की श्रेणी में क्यों आ रही हैं?
नारवी जी–व्यंग्य में गंभीरता, शिक्षा तथा दिशा–निर्देश की अनिवार्यता होती है जो कम होती जा रही है और केवल हास्य बढ़ता जा रहा है।
बस्तर पाति–क्या उम्र के साथ लेखन में परिपक्वता आती है, या ये जुमला यूं ही उछाला गया है?
नारवी जी–आती है।
बस्तर पाति–मात्र कविता लिखना साहित्य है या फिर अन्य विधाओं से जुड़ना चाहिए?
नारवी जी–न तो केवल कविता लेखन में सिमटना अनिवार्य है और न ही अन्य विधाओं से। अभिव्यक्ति की परिपूर्णता जरूरी है।
बस्तर पाति–आप साहित्य की किस विधा को अपने लिए अनुकूल मानते हैं? क्या उसी विधा ने आपकी पहचान बनायी है?
नारवी जी–कविता (ग़ज़ल)। हां।
बस्तर पाति–सुविधाओं के बीच रहकर जो साहित्य रचा जाता है, क्या वह आम लोगों का साहित्य हो सकता है?
नारवी जी–साहित्य कोई उपभोक्ता वस्तु नहीं बल्कि साहित्य, सामाजिक परिवेश का विश्लेषण एवं दिशा–निर्देश का माध्यम है।

ग़ज़ल–10

ग़म हो या हो खुशी बराबर है।
अपना अपना मगर मुकद्दर है।।
दिल से गुज़री है शाह राहे वफ़ा,
अक़्ल इस रास्ते पर पत्थर है।।
दिल को लाज़िम है दर्द मंदी भी,
वर्ना दिल दिल नहीं पत्थर है।।
दर्दमंदी न हो जो इंसां में,
जानवर आदमी से बेहतर है।।
मौत लाज़िम है ज़िन्दगी के लिए,
ज़िन्दगी मौत का मुकद्दर है।।
दौरे–जमहूरियत मआज़ अल्लाह,
हर कोई हर किसी से बढ़कर है।।
दिल को वीरान कर रहे हैं करें,
यह भी सोचें कि आप का घर है।।
नाम गुम करदा जो 'नसीम' था कल,
आज इक नामवर सुख़नवर है।।

ग़ज़ल–11

ज़िन्दगी गुम थी नीमजानी में।
एक ठहराव था रवानी में।।
था गुनाहों की जुल्मतों का राज़,
धुन्धलका या जहाने फ़ानी में।।
रूहे अफ़साना का वरूद हुआ,
जान सी पड़ गयी कहानी में।।
रोशनी कम थी चांद तारों से,
नूर उभरा हिरा के ग़ारों से।।
बारक अल्लाह आये ख़ैरे अनाम,
मुन्तज़िर जिनका था जहां का निज़ाम।।
जिनसे तकमीले दीन होनी थी,
हां वही सारे अबिया के इमाम।।
वो मो अल्लिम के थे जो उम्मी लक़ब,
जिनके नायेब हैं आलिमाने किराम।।
साया जिसका न था वो पैकरे नूर,
मुज़हिरे नूरे हक़ मुजस्स्म नूर।।
साहिबे हद्दे एहतराम आये,
मुज़हिरे रहमते तमाम आये।।

नसीम आलम 'नारवी'

मालूम होगा शायद

तुम जो यहां बैठे अख़बारों में
ख़बरें ढूंढ़ा करते हो
ख़बरें जो लिखीं होतीं हैं
अख़बारों के पन्नों पर
घुमड़ती हैं ज़ेहन में
दिनभर काले कीड़ों की तरह
इन्हीं ख़बरों के बीच
गुज़रता जाता है सारा दिन
अख़बारों के पन्नें यूं हीं कमरे के
किसी कोने में पड़े फड़फडाते हैं
ये जो ख़बरें ख़ास थीं सुबह
आम हो उठतीं हैं
लोगों की ज़ुबानों में आकर
चर्चायें हुआ करती उनपर
चौक–चौराहों, गली–मुहल्लों में
चाय की चुस्कियों और
सिगरेट के उड़ते धुंये के बीच
तुम चाहो तो सुन, देख सकते हो
दरवाजे के उस पार
वह जब इन अख़बारों में आती हैं
ख़ास हो जाया करतीं हैं अक्सर
इन्हीं ख़बरों को तुम हर रोज़
पन्नों में ढूंढ़ा करते हो
दंगों, सियासी जंग, हत्या, बलात्कार
बड़ी उत्सुकता से पढ़ते हो हर रोज़
इन ख़बरों का बनना तुम्हारे ही हाथों में है
तुम जो हर रोज़
इन ख़बरों के बीच से होकर गुज़रते हो
हर रोज़ इनका सिरा
तुम्हारे ही हाथों में थमा होता है
तुम्हारे ही हाथों गढ़ी जाती हैं ख़बरें
लेकिन तुम इसे जान नहीं पाते
यह सच्चाई है क्योंकि
हर रोज़गर तुम इन ख़बरों को न पढो
ये गुम हो जायेंगी
अख़बारों के इन्हीं पन्नों से
कहीं जा छिपेंगी कोने में
तुम जब इन्हें पढ़ना छोड़
जा खड़े होगे ख़बरों के बीच
रोकोगे इन्हें बनने से
ये ख़बरें कहां बन पायेंगी
ख़बरों का वजूद कहीं गुम हो जायेगा
क्योंकि यह ख़बरें तुम से हैं
तुम ही हो जो इन्हें बनाते हो
लिखते हो इन्हें अखबारों में
देखते हो इन्हें पन्नों में ताकि
हर रोज पढ़ पाओ नयी ख़बर
सुबह चाय की चुस्कियों में

चौराहे के उस पार

देखता मैं सर्दी की स्याह रात
चौराहे के उस पार
टिमटिमाता नीरव आकाश
प्रकृति तल में सिमटता निर्विकार
सोचता,
सड़क की मद्धिम रोशनी में
वादियों में गिरता हिमकण
चांदी–सा चमकता साभार
हवा,
चीरती अंतस को बार–बार
मौन रात और मैं
हम दोनों ही साथ–साथ
धूप,
ठिठुरती आती अल सुबह
अर्घ्य देती स्त्री
सर्दी स्निग्ध सुस्त खड़ी
खिल उठती मुरझायी धरती
मैं चौराहे पर
हथेलियों में लिए प्राण
गाता मन ही मन ये मलय गान
देखता लोगों की बेवज़ह
ठिठुरन भरी चाल

श्रीमती रश्मि पाठक
श्रीकृष्ण कुमार पाठक
संडे मार्केट रोड,
टाऊन घर के निकट
रातू, रांची– 835222
मो. नं.– 8797579112

द्रोपदी

हाथ पकड़ कर दुश्शासन मौन सभा में लाया
पांडव कुछ भी न बोले माँ का दूध लजाया
मेरी करूण वेदना पर किसी को दया न आई
सूरज निकला था पर जीवन में भोर न आई
सबकुछ पांडव हारे दांवों पर मुझे लगाकर
दुर्योधन शकुनी खुश थे छल से मुझको पाकर
राजा अन्धे, द्रोण, भीष्म, गंधारी मौन रही
धुंधले धुंधले अम्बर सहमी धरती मौन रही
व्याकुल थे तन मन गहन अंधेरों को भाँप गया
मेरी लाचारी पर काल समय भी काँप गया
अपमान हुआ केशों को खोले मैं कहती हूँ
साँसें अन्तिम हो अन्याय नहीं मैं सहती हूँ

भावों का झरना

उठते भावों से
भीग रहा है तन मन
कभी मैं खुश होती हूँ
धवल तरंगों से
जैसे कोई गीत सुनाएँ
जंगल की तन्हाई में
उड़ते पंछी इच्छाओं के
यहाँ–वहाँ घूम रहे
इन आशाओं के संग–संग
कभी तो फूटेगा
तुम्हारे ह्रदय का झरना
गिरती बूंदों के संग–संग
बहती जाऊँगी साथ तुम्हारे
जीवन के सागर को
पायेगें हम दोनों
मुझे प्रतीक्षा है केवल
तुम्हारे प्यार के झरने की
तुम्हारे प्यार के झरने की।।

प्रीतिप्रवीण खरे
19, सुरूचि कॉलोनी
एम.ए.सिटी चौराहे के पास
कोटरा रोड भोपाल–462003(म.प्र.)
सम्पर्क सूत्र : 9425014719

ग़ज़ल

आप के मुस्कराने की हर अदाओं ने हमें मारा है
पूछिये भी किसी से, कि हर सवालों ने मारा है।

आते जाते सभी के ही चेहरों पे कहीं तो जख्म है
शीशे पे निहारने की तमन्ना ने ही उनको मारा है।

दिल की बातें भी तुम्हे कैसे लिख भेजें, बोलो
कि अब तो दिल को भी, धड़कनों ने ही मारा है।

यहां अब भी सब वैसे ही दिखते हैं, जैसे थे
मेरी नजरों को, ख्वाबों के भुलावे ने मारा है।

एक वो थी, एक मैं भी था, और सारा जहां भी था
गजभर की तन्हाई में, मुझे मीलों के दर्द ने मारा है।

दूर आये थे, कि अपनो की ही तलाश थी हमें यहां
मिले जो यहां, उन्होंने हमें अजनबी बनाके मारा है।

ग़ज़ल

बात फैल गई जो, जलती आग की तरह
यहां आप मिले मुझे, उड़ते धुयें की तरह।

सच तो कुछ और ही था, उससे छुपाया गया
झूठ भी बोला उन्होंने, इक दिल्लगी की तरह।

दूरियां बन गयी यूं कि बातें भी बदल गयी
अब वो मिले हमसे, कोई हमलावर की तरह।

तमन्ना थी कि हम भी कोई हमसफर बनें
मिले भी जो वो नकाब ओढ़े चेहरे की तरह।

उनसे मिलने की चाहत ने यहां तक तो ले आया
बुलावा भी मिला जो, खुले खबरदार की तरह।

शिवराज प्रधान
दुमचिपरा टी गार्डन
पो.आ.–रामझोरा
जिला–जलपाईगुड़ी
पश्चिम बंगाल–735228
सम्पर्क सूत्र : 09734042876

कुछ ऐसी हो रात

एक रात
कभी कुछ ऐसी हो
लगे हर घड़ी ही
जैसे बस शुरू हुई है अभी–अभी ही
खुले आसमान पर
दमकते सितारे हों,
इर्द–गिर्द से बहती हवा को रोकने वाली
न कोई मीनारें हों,
बस चारपाई पर लेटा
थका बदन हो
और बदन पर खुमार के रंग
तुम्हारे हों,
इर्द–गिर्द कहीं करीब
तुम भी हो संग
मेरे सर पर बालों को
अपनी उंगलियों से सहलाते हुए.

आशीष आनंद आर्य 'इच्छित'
हाउस नं–5
रानी लक्ष्मीबाई हास्पीटल के पास
राजाजीपुरम विस्तार
(ब्लॉक–अ)
लखनऊ–226017
मो.–07498340424

नदी का सफर.....

जमीन के खाँचों में बहकर
अजब सुर फूँकती है लहर
अपनी गति में कहलाती है नदी
अपने अंत पर विशाल समंदर का असर.
बाँध का न इसके किनारों पर
सिमटता है अहसासों में
एक सुपुर्दगी का दौर बड़ा
अजब तल्लीनता का एकाकी मंजर.
मद्धम–मद्धम हर उफान में शरारत
अजब शराफत जब पाँव बाँटें इसकी डगर
बिछा रहा इंसान इसके पड़ावों पर
जिन्दगी खूबसूरत
हर नदी एक बड़ा सफर.
अपने भीतर भी
अपने इर्द–गिर्द भी
पानी के पैंतरों–पैबंदों से
हर लहर, हर घड़ी जिन्दगी को नजर.!!

इन्तज़ार है तेरा

आज भी दरवाज़े पर निगाहें टिकाए बैठी हूं
इस इन्तज़ार में कि कभी तो आएगा वो
धीमे से मुस्कुराता हुआ
मदमस्त चाल चलता हुआ
फिर से आएगा करीब मेरे
और ले लेगा मुझे आगोश में
उसका स्पर्श कर देगा मुझे रोमांचित
उसके प्यार के मीठे शब्द
घोल देंगे कानों में मिश्री सी
उसकी ऑखों से छलकेगी मय
जो कर देगी मदहोश मुझे
नयनों से होंगे गिले शिकवे
मौन अधर साक्षी होंगे उस तड़प के
ऑखों से बरसेगा सावन
कर देगा शीतल हमारा मन
उसका आलिंगन देगा वह सुकून
जो दुनिया की किसी शह में नहीं
ऑखें बंद कर भूल जाऊंगी
मैं सारे संसार को
प्रेम की वर्षा से भीगेगा तन–मन
आज भी इन्तज़ार है कि
कभी तो आएगा वो ।

करमजीत कौर
संपादक 'महिला मीडिया'
रेलवे कॉलोनी,
जगदलपुर जिला–बस्तर, छ.ग.
पिन–494001

ग़ज़ल

अपने दर्द को हम इस कदर छुपाते चले गए
भीगी ऑखों से भी हम मुस्कुराते चले गए ।
उनसे इक बार मिलने को, तड़पते रहे हर पल
लेकिन जब वो मिले, नज़रें चुराकर चले गए ।
इश्क करने की सजा मिलेगी ये तो तय था
न जाने क्यों फिर भी हम दिल जलाते चले गए ।
उनकी नशीली ऑखों से छलकती रही शराब
हम पीते चले गए वो पिलाते चले गए ।
जिनके वादों पे यकीन कर हमने छोड़ा जहां सारा
मझधार में हमको छोड़ वो इतराते चले गए ।
उनके इश्क के फरेब में हम फंसे इस कदर
वो वादे करते गए और हम निभाते चले गए ।
तन्हाई और दर्द की 'जीत' को मिली सौगात
हम तड़पते रहे और वो जश्न मनाते चले गए ।

ग़ज़ल

साया हटकर राहगुज़र से।
अंजाना था वक्ते सफर से।।
कोई तुम्हारे ग़म ना समझे,
लेके तबस्सुम निकलो घर से।
चेहरों पे थी सबके उदासी,
देखा जिसको अपनी नज़र से।
तैरना आये तभी उतरो,
गुज़र ना जाय पानी सर से।
घर के दरीचे खोले रख्खो,
जाने हवायें आयें किधर से।
रात के ख्वाबों को मत भूलो,
सोकर उठ्ठो जब बिस्तर से।
ऊंचाई तक जाये परिन्दा,
ग़र्द झटक कर बालों–पर से।
मंजिल तक कश्ती पहुंचेगी,
बचकर जब निकलोगे भंवर से।
सोने वाले जागते कब हैं,
'सूरज' तो निकला है सहर से।

डॉ.सूर्यप्रकाश अष्ठाना 'सूरज'
एल आई जी–8 फेस–1,
सहयाद्रि परिसर
भदभदा रोड, भोपाल, म.प्र.
फोन–09826991866

ग़ज़ल

नफरत की आग बुझाना हो सकता था।
जंगल में से आना जाना हो सकता था।।
अपनी अपनी करते जिम्मेदारी पूरी,
ये मौसम फिर और सुहाना हो सकता था।
कश्ती का रूख़ मोड़ लिया आहट सुनते ही,
वरना तूफां से टकराना हो सकता था।
दिल से लगा बैठा होता जो ना समझी को,
तेरी यादों में दीवाना हो सकता था।
हमदम का जीवन में जो मिलता साथ अगर,
तो मैं हर ग़म से बेगाना हो सकता था।
दिल के तोड़े से कब टूटे मंदिर मस्जिद,
रंजिश से पहले समझाना हो सकता था।
मझधारों से घबराने वालों सोचो तुम,
जीवन में कुछ खोना पाना हो सकता था।
सूरज को जो देखा करते छत पे जाकर,
रातों वाला चांद पुराना हो सकता था।
आंगन–आंगन कैद हुई है धूप सारी,
रौशन 'सूरज' और ज़माना हो सकता था।

इन्द्र धनुष के साए में.....

इन्द्र धनुष के साए में,
लिखते गये अनुबंध नये
मादक गंधी फूल खिले
आंगन बिखरा लाल–गुलाल
अधरों में बंद रहे गीतों से
मुक्त हुए कुछ छंद नये....
मौन शिखर से उतरी धारा
लहर–लहर हो लहर गई
कौन संभाले वेग सरित का
बनते गये तटबंध नये.....
शब्द बिखर गये मौन स्वरों में
गीत नहीं बस नाद बचा
भूल गये सब रिश्ते जग के
जुड़ते गये संबंध नये....
कान्हा ढूंढे वृन्दावन में
राधा इधर कहां हुई ओझल
हर शाख बंधे, सिंदूरी पट थे
लगते गये प्रतिबंध नये.....
इन्द्र धनुष के साए में, ...

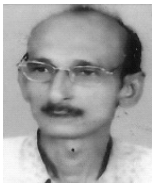

डॉ.श्रीहरि वाणी
विद्या वाचस्पति
92/143 संजय गांधी नगर
नौबस्ता, कानपुर, उ.प्र.
पिन–208021
फोन–09450144500

फिर चला गया है.....

इतना भर है ज्ञात कि कोई आया था फिर चला गया है
चंपा की गंध बसी मन में, अंजाने महक उठी बेला
कोई चुपके से बगिया की, खिलती कलियों से आ खिला
मेरा भोला यौवन, नटखट छलिया से फिर छला गया है...
कसक रहे तन से उठती है, मीठी–मीठी पीर
शीतल शांत सलोने मुख पर उड़ कर गिरा अबीर
जलते तप्त बदन पर लगता, चंदन सा कुछ मला गया है...
अलसाए नैनों पर छाए उलझे–उलझे बाल
बिखरे आंचल में टंके हुए हैं अनगिनत नये सवाल
इन सांसों में गंध दूसरी निश्चय कोई मिला गया है....
पंखुडियों ने बिन पूछे ही सारे बंधन खोल दिया
क्या जानू बेसुध अधरों ने कितने चुंबन मोल लिए
अंध कूप के ठहरे जल को कोई आ कर हिला गया है
इतना भर है ज्ञात कि कोई आया था फिर चला गया है।

काव्य

इक सा

कंचन सहाय वर्मा
ई–ई–31, इंद्रप्रस्थ,
रायपुरा, शुभ होण्डा के सामने,
रिंग रोड, रायपुर छ.ग.
मो–9406075608

नारी सिर्फ षोड़सी या
बिहारी की नायिका नहीं
कोमलता की सुंदरतम कृति नहीं
दहेज की ज्वाला की समिधा नहीं
पराश्रिता अबला नहीं
अपितु एक बदली हुई धारा है
उसकी इच्छायें
उसका सुख–दुख
उसके चांद–तारे
मर्म की पहचान रखते हैं
वह नहीं हैं कठपुतली किसी के सहारे
आज की नारी छाया नहीं
वरन् एक क्रांति है
जिससे दिशाएं अपना स्वर सहलाती हैं
और बेजुबान टहनियां
आंधी में बदल जाती हैं।

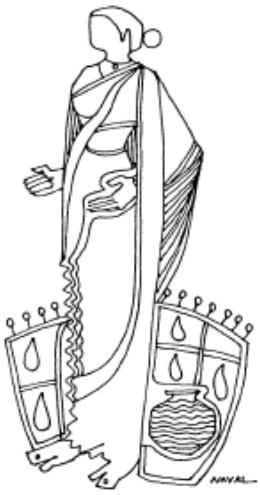

अपना बस्तर

अपना प्यारा बस्तर भारत की शान है
स्वर्ग जैसी धरती अलबेली महान है।
तीरथगढ़, चित्रधारा, तामड़ाघूमर के साथ
देश का नियाग्रा चित्रकोट जलप्रपात है।
बारसूर, कुटुमसर, कैलाशगुफा की निराली आन है।
गोंचा, दशहरा की रथयात्रा देवउठनी,
दियारी, नवाखाई जैसे कई त्योहार हैं।
घोटुल में जीवनसाथी हैं मिलते
नगाड़े की थाप पर ग्रामीण नाचते
सींगों और पंखों की पगड़ी बांधे सिर पर
सिक्को, कौड़ियों की माला पहने गले में
यहां की संस्कृति की अपनी मिसाल है।
इमली, काजू, छिन्द, सल्फी के पेड़ संग
इमारती लकड़ियों के वृक्ष और वन की हरियाली
लौह, कोरंडम जैसे खनिजों की खान है।
कोसा वस्त्र, बांस, काष्ठ, लौहशिल्प, जूट उद्योग
इस अंचल की पहचान है।
दंतेवाड़ा की माई दंतेश्वरी का असीस है सब पर
हिन्दू, मुसलिम, सिख ईसाई रहते यहां मिलजुलकर
हर हाल में प्रसन्न रहते निश्छल व्यवहार है बस्तर
की माटी के सभी संतान हैं।

काव्य

ग़ज़ल

चलने वाले जरा देख कर,
हादसों से भरा है सफ़र।
रखिए हालात मद्देनज़र,
कौन देता है किसको ख़बर।
रहगुज़र के लिए मंजिलें,
मंज़िलों के लिए रहगुज़र।
उलझनों से उलझती हुई,
ज़िन्दगी आ गई राह पर।
हम सभी एक मज़हब के हैं,
आज इस पर बात कर।
सोचते रह गये हम 'विकास',
ज़िन्दगी हो गई मुख़्तसर।

ग़ज़ल

काश हम आपकी अदा होते,
दर्दे–दिल की बड़ी दवा होते।।
मैंने ग़ैरत को चुन लिया वरना,
आज हम भी हवा हवा होते।।
अब तो दिल की यही तमन्ना है,
हम किसी दिल की तमन्ना होते।।
आदमी होने से तो अच्छा था,
किसी बच्चे का झुनझुना होते।।
हो गये दिलज़दा 'विकास' वरना,
एक दिलावेज़ फरिश्ता होते।।

यादव 'विकास'
अम्बिकापुर, छ.ग.

सुकून का.....

सुकून का साया गया,
हरा दरख्त काटा गया।
खुशी के बदले ग़म दिये,
इंसानियत का नाता गया।
मुन्ना गले से लिपट गया,
दादा गीत गाता गया।
क्या हिन्दू क्या मुसलमान
एक उजाला बांटा गया।
प्यार में क्या नफा–घाटा
देता गया पाता गया।
'विकास' उसकी तरफ बढ़े,
वह कह कर जो टाटा गया।

बस्तर की पीड़ा

किसे कहें बस्तर की पीड़ा
कौन सुने इसकी चित्कार
आज यहां के जनमानस में
मचा हुआ हाहाकार।

राजनेता तो यहां
बस वोट भुनाने आते हैं
काम है जिनका रक्षा करना
भक्षक वो ही बन जाते हैं
नौकरशाह भी लोगों पर
कर रहे हैं अत्याचार।

हरी–भरी ये धरती
लहू से रोज नहाती है
बंदूकों की गोलियां
यहां कितनी लाशें बिछाती है
हर तरफ छाया है मातम
हर तरफ बस चीख पुकार।

रेखराम साहू
शा.इंजीनियरींग
महाविद्यालय
जगदलपुर
जिला–बस्तर छ.ग.
फोन–8878448906

ग़ज़ल

नहीं गर तेरे स्तर का हूं
बतला दो, फिर मैं क्या हूं ?
तुम विद्युत कृत्रिम प्रकाश हो
मैं पूनम की चंद्रप्रभा हूं।
तुम महलों का राजरोग हो
मैं फुटपाथ की अमिट क्षुधा हूं।
तुम उद्घोष हो एक कर्णकटु
मैं विरही की गीत व्यथा हूं।
तुम कल्पनामयी कविता हो
मैं इक सच्ची आत्मकथा हूं।
तुम हो अमरबेल चमकीली
मैं बसंत की एक लता हूं।
दिया है गरल, धरा अम्बर को
शहर हो तुम, ग्राम सुधा हूं।

दिवाकर दत्त त्रिपाठी
एम.बी.बी.एस
रूम नं.–171/1 बालक छात्रावास
मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज
इलाहाबाद, उ.प्र.
सम्पर्क सूत्र : 09616012904

आज कहीं बरबाद न कर दे,
आने वाला कल सोचूंगा,
अब हर एक मुद्दे से पहले
जन जंगल जमीन सोचूंगा।
मैं कहता हूं छत मिल जाये
फुटपाथों की बस्ती को भी,
हरित धरा को हरित कर सकूं
तो फिर मैं मंगल सोचूंगा।
जो अभाव में न भर सके
रंग तूलिका में, सपनों की,
उन सपनों को रंग दे सकूं
तो मेहन्दी काजल सोचूंगा।
भ्रष्ट तंत्र है भ्रष्ट नीति है
शासक भी भ्रष्ट हो गये,
जो इन सबकी नींव हिला दे
ऐसी उथल–पुथल सोचूंगा।
अभी प्रियतमे गा लेने दो
मुझे गीत अवसाद भरा तुम,
कभी मिली फुरसत तो तुझ सी
–सुन्दर ग़ज़ल सोचूंगा।

तुम वादा किये जा रहे हो

मेरे हाथों से हाथ अपने तुम छोड़े चले
जा रहे हो,
बाहों के दरम्यान तुम फासले बढ़ाते
चले
जा रहे हो।
वापस आकर मेरी बांहों में रहने का
एहसास
दे जाओ,
तुम जो कुछ लम्हों के लिये हमसे दूर
होते चले
जा रहे हो।
हमसे दूर तो शायद तुम भी न जाना
चाहोगे,
फिर भी जाते–जाते हमसे मिलने का
तुम वादा
किये जा रहे हो।

कृपाल देवांगन
बी0एस0सी0 द्वितीय
नागवंशी कॉलोनी
कंगोली, धरमपुरा
क्राइस्ट कॉलेज, जगदलपुर
मो0नं0 8349141104

हसीन दर्द

जो कहना चाहते हो हमसे वह कह भी
लो,
ऑखों के आशियाने में हमारे तुम ज़रा
रह भी लो।
जानना चाहते हो कि मोहब्बत की हवा
किस तरह
बहती है,
तो तुम इन हवाओं में पंछियों की तरह
बह भी लो।
हमसे मोहब्बत करके दर्द दूरियों का सहा
न जाए अगर तुमसे,
तुम भी हमारी तरह मोहब्बत कर हसीन
दर्द सह भी लो।

काव्य

अब तक कुछ भी नहीं मिला है सड़सठ सालों में

जे.कुमार संघवी
201, राजश्री पॉम
गणेश बाग, चरई
थाने (वे)–400601
फोन–09892007268

भारत को आजाद करने लाखों ने बलिदान दिया,
वीरप्रसूता मांओ ने इकलौता भी संतान दिया।
गोरे अंग्रेजों को भगा के कार्य तो महान किया,
लेकिन काले अंग्रेजों के हाथों हिन्दुस्तान दिया।
पहले लड़े थे गोरों से और अब लड़ना है चोरों से
काले धन को खाने वाले काले आदमखोरों से।
पहले जालिम गोरों में थे अब दिखते हैं कालों में,
अब तक कुछ भी नहीं मिला है, हमको सड़सठ सालों में।।

गर्व था भारत भूमि का भगतसिंह की माता हूं,
झांसी की रानी जैसी मर्दानी की यशगाथा हूं।
पहले चिड़िया कहलाती थी भारतमाता सोने की,
पर अब आवाजें आती हैं इस चिड़िया के रोने की।
सोना सारा लूट लिया अब केवल चिड़िया रह गई,
झांसी की रानी की कुर्बानी, पानी में बह गई।
जनता को है नेताओं ने घोटा घोटालों में,
अब तक कुछ भी नहीं मिला है, हमको सड़सठ सालों में।।

सरकार जो वतन की हिफाजत ख़ातिर बुनी गई,
सरकार जो जनता हेतु जनता द्वारा चुनी गई।
वही सरकार अब शामिल है खुद की गुण्डागर्दी में,
मुझको गुण्डे दिखते हैं खादी व खाकी वर्दी में।
पूरा देश नजर आता है, मंडी ताजा लाशों की,
हर चौराहों से आती है, आवाजें संत्रासों की।
जालिमों ने जकड़ लिया है, जनता को जंजालों में,
अब तक कुछ भी नहीं मिला है, हमको सड़सठ सालों में।।

मुझको श्वेत खादी पे खूनी दाग दिखाई देता है,
पूरा भारत जलियांवाला बाग दिखता है।
लंडन जाकर उस डायर को मारकर जो लेटे हैं,
दिल्ली शायद भूल गयी, हम उस उधम के बेटे हैं।
कब तक जुल्मी जुल्म करेगा, आतंक गलियारों से,
जर्रा–जर्रा गूंज उठेगा, इंकलाब के नारों से।
'जैनम' को आशा दिखती है, तुम भारत मां के लालों में।
अब तक कुछ भी नहीं मिला है, हमको सड़सठ सालों में।।

बस्तर पाति प्राप्त करें–

जगदलपुर– (1)अनुराग बुक डिपो, सिरासार चौक (2)मिश्रा बुक डिपो, नया बस स्टैण्ड (3)महावीर बुक डिपो, हाई स्कूल रोड (4)नरेन्द्र न्यूज एजेन्सी, पुराना बस स्टैण्ड ***कोण्डागांव***–(1)अमित बुक डिपो, बस स्टैण्ड के पास ***कांकेर***–(1)विजय बुक डिपो, पुराना बस स्टैण्ड के पास ***नारायणपुर***–(1)स्वामी स्टेशनरी, बस स्टैण्ड के पास ***सुकमा***–(1)दंतेश्वरी स्टेशनरी, बस स्टैण्ड के पास

बिलासपुर–(1)रेल्वे बुक स्टॉल ***रायपुर***–(1)पारख न्यूज एजेन्सी, पुराना बस स्टैण्ड (2)अशोक बुक सेलर, जय स्तम्भ चौक (3)रामचंद बुक डिपो, पुराना बस स्टैण्ड (4)क्रास वर्ड, कलर्स मॉल, पचपेढ़ी नाका (5)रेल्वे बुक स्टॉल ***भाटापारा***–(1)रेल्वे बुक स्टॉल ***भिलाई***–(1) श्री राजेन्द्र जैन, के.पी.एस. स्कूल के पास, नेहरू नगर ***दुर्ग***–(1)खेमका बुक डिपो, रेल्वे स्टेशन के पास ***दल्ली राजहरा***–(1)राकेश पान पैलेस, बस स्टैण्ड (2)मनोज पान पैलेस, बस स्टैण्ड

इंदौर–(1)जैन बुक स्टॉल, सरवटे बस स्टैण्ड (2) श्री इंदौर बुक डिपो, नवनीत प्लाजा, ओल्ड पलासिया ***जबलपुर***–(1)गंगा बुक डिपो, श्याम टाकीज के पास (2) साहू बुक डिपो, श्याम टाकीज के पास (3)जनता न्यूज एजेन्सी, श्याम टाकीज के पास ***करेली***–(1)श्री बालचंद जैन, मेन रोड ***सीहोर***–(1)सतीश जनरल स्टोर्स, किथौला बाजार ***भोपाल***–(1)वैरायटी बुक हाउस, जी. टी.बी काम्पलेक्स, टी.टी.नगर

नागपुर–(1)पुस्तक संसार, धानवते चैम्बर्स, सीताबर्डी

छपरा–(1)मोहन बुक्स एण्ड न्यूज एजेन्सी, रोडवेज बस स्टैण्ड ***पटना***–(1)मुरारी प्रसाद बुक सेलर, न्यू मार्केट ***रांची***–(1)माडर्न बुक डिपो, मेन रोड ***पुर्णिया***–(1)लालमुनी बुक स्टॉल, श्री लालमुनी शाह, आर.एन.शाह चौक

बस्ती–(1)शिशिर द्विवेदी, उपसंपादक मीडिया विमर्ष, बस्ती उत्तरप्रदेश मो.–09451670475

काव्य

ग़ज़ल

उन्हें नामों में ढ़ालने से, कुछ नहीं होता
बेवजह रिश्ते पालने से, कुछ नहीं होता।

वो आयेगा सताकर, रूलाकर चला जायेगा
बुरे वक्त को टालने से, कुछ नहीं होता।

अच्छे बुरे करम ही हमेशा साथ रहते हैं
मंदिर में पैसे डालने से, कुछ नहीं होता।

किसी को तूफां से बचाना आना चाहिए
सिर्फ कश्ती संभालने से, कुछ नहीं होता।

कहीं और ढूंढ लेते हैं, वो अपनी पहचान
एक महफिल से निकालने से, कुछ नहीं होता।

माधुरी राऊलकर
एम.ए. बी.जे.
छः ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित
76, रामनगर,
नागपुर महाराष्ट्र
सम्पर्क सूत्र : 08793483610

अच्छा नहीं होता

इतना लंबा सफर, अच्छा नहीं होता,
थकान का असर अच्छा नहीं होता।

हमको यूं ही हमेशा लगा रहे,
हमको चीज़ का डर अच्छा नहीं होता।

जहां लोग लड़ते रहते हैं अक्सर,
ऐसा कोई घर, अच्छा नहीं होता।

लिबास तुम्हारा भले ही अच्छा हो,
बातों में ज़हर, अच्छा नहीं होता।

ज़िन्दगी अपनी दांव पर लगे ऐसा,
जानलेवा हुनर, अच्छा नहीं होता।

हाइकू

पावन प्यार
करो तो पाओ सजा
ये कैसी बात!

प्यार है पूजा
मन में जपो नाम
पंच ना जाने।

मुखर प्रेम
मजबूरी में मौन
पूरा जीवन

छोटी सी बात
प्रेम चाहते सब
करे ना कोई!

उतरे तारे
सज गये मांग में
आये हैं पिया।

गली में प्रेम
गली में खेलें बच्चे
गली में प्राण।

बिकता प्रेम
खरीद लेती सर
किसी भी भाव।

प्रेम में पगे
अंजुरी भर शब्द
हरते ग़म।

प्रेम का भाव
चाहता गम्भीरता
यदि सच्चा हो।

जन्मा
भाव
दूर।

वीणा के तार
मन में भरें सुर
झनके दिल।

प्रेम की धारा
बह रही बाहर
घर है प्यासा।

प्रेम में पूजा।
प्रेम से करो पूजा।
मिलेगा प्रेम।

मोरनी डोले
ठुमुक नाचे मोर
प्रेम में डूब।

चांदनी फैली
रातरानी महकी
तुम आई क्या?

पनपा प्रेम
उड़ती अफवाह
चौकन्ने खाप!

फूलों का गुच्छा
प्रेम का उपहार
सूखता दिल।

मुखर प्रेम
मांगता समर्पण
दूसरों से ही।

कोरा कागज
लिखकर चाहे जो
भर दो दिल।

मन महके
रातरानी से ज्यादा
कैसे हुआ ये?

डॉ.आशा पाण्डेय
5–योगीराज शिल्प
विशेष पुलिस महानिरिक्षक बंगला
के सामने, कैम्प
अमरावती, महाराष्ट्र–444602
सम्पर्क सूत्र : 09422917252

काव्य

जैसे छू लो आसमान

जैसे छू लो आसमान
कुछ इतना ही आसपास थी मृत्यु
कुछ इतना ही आसपास नहीं था जीवन
कुछ इतना ही आसपास थीं पुकारती पुकार
और मैं पुकार रहा था जीवन की कविता
या कविता का जीवन
अंतिम शब्द नहीं है कविता में मृत्यु
अंतिम शब्द है मृत्यु में कविता
सुनिश्चित है कि मरूंगा मैं
सुनिश्चित है कि मरेगा मैं भी
लेकिन क्या वह उड़ान भी
जो मैं भरता हूं मृत्यु विरूद्ध
और जीवन के पक्ष में ?
शायद नहीं
संशय नहीं
जैसे छू लो आसमान
कुछ इतना ही आसपास थी मृत्यु
जब मैंने की थी कोशिश प्रेम
और आत्महत्या इत्यादि से मिलती–जुलती
जैसे छू लो आसमान।

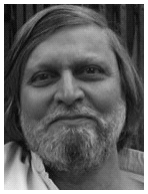

राजकुमार कुम्भज
331, जवाहरमार्ग, इंदौर
म.प्र.
पिन–452002
फोन–07312543380

अकस्मात् नहीं है कुछ भी

अकस्मात् नहीं है कुछ भी
अकस्मात् नहीं होता है कुछ भी
अकस्मात् होने से पहले–पहल भी
होता है, होता ही है, बहुत कुछ
सिगरेट के पैकेट पर लिखी होती है चेतावनी
लिखी चेतावनी पढ़ने के बावजूद
लोग पीते हैं सिगरेट
शराब के लेबल पर लिखी होती है चेतावनी
लिखी चेतावनी पढ़ने के बावजूद
लोग पीते हैं शराब
सड़कछाप दीवारों पर लिखी होती है चेतावनी
लिखी चेतावनी पढ़ने के बावजूद
लोग मूतते हैं वहीं
जहां–जहां लिखी होती है चेतावनियां
वहां–वहां अगर मूतते हैं लोग
तो यही है लोकतंत्र
प्रतिबंध हटाओ, लोकतंत्र बनाओ
प्रतिबंध हटाने या हटवाने में जाएगी जान भी,
तो भी
अकस्मात् कुछ नहीं होता।

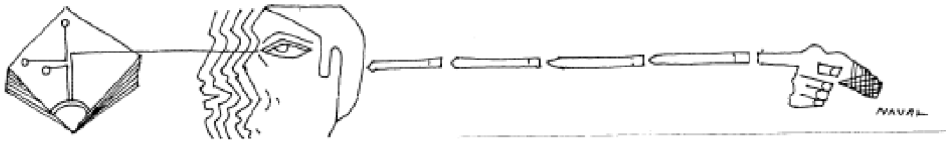

काव्य

मेरा घर नहीं है

कि जब से सर पे मेरे 'सर' नहीं है
बहुत बेफिक्र हूं कुछ डर नहीं है।
तुझे भी साथ ले चलता मैं लेकिन
भरी दुनिया में मेरा घर नहीं है।
मरे सीने में हैं तूफां हजारो
मगर आंखों में समन्दर नहीं है।
रहा जो दौड़ता खुशियों के पीछे
खुशी उसको ही मयस्सर नहीं है।
भयानक आग सी हर सू लगी है
तबाही के सिवा मंजर नहीं है।
जहां मैं पूजता इंसां को 'साज'
कोई मस्जिद कोई मंदिर नहीं है।

ज्ञानेन्द्र साज
संपादक
'जर्जर कश्ती'
17/212, जयगंज,
अलीगढ़–202001
फोन–09219562656

हम वतन की बात

करता नहीं है कोई भी हमसे वतन की बात
बातें हिमालिया की या गंगोजमन की बात
हिन्दू की बात है या मुसलमां की बात है
गर बात नहीं है तो नहीं हमवतन की बात
हर कोई अपने–अपने इरादों पे चुस्त है
अपने ही दायरे में हैं अब फिक्रो–फन की बात
उठता है धुंवा अब मेरे गुलशन से क्या कहूं
अब आग उगलती है हरेक अंजुमन की बात
इस दर्जा फर्क दिल में उठाया गया है 'साज'
भूले हैं लोग बाखुदा राम ओ किशन की बात

उल्लासमय होते है बस्तर के मण्डई–मेले

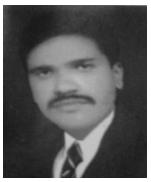

शिवशंकर कुटारे
जी0ए0डी0 / जी0–05
कलेक्ट्रेट कालोनी
नारायणपुर(छ0ग0)
मो.– 9406294695

छत्तीसगढ़ के दक्षिण में स्थित बस्तर अंचल घने जंगलों, उंचे पर्वत श्रृंखलाओं, मनोरम प्राकृतिक झरनों से आच्छादित है। यहां पर आदिम संस्कृतियां आज भी जीवित हैं। पारम्परिक पर्वों, लोक नाटकों, लोक नृत्यों से यहां के निवासी अपना मनोरंजन करते हैं। इनके द्वारा किया जाने वाला "पारद" (आखेट) भी मनोरंजन की श्रेणी में आता है। बस्तर में आयोजित होने वाले पर्वों में अमूस, नवाखानी और दियारी प्रमुख हैं। यह त्यौहार सम्पूर्ण बस्तर में पारम्परिक हर्ष उल्लास के साथ मनाया जाता है। जगदलपुर में दशहरा और गोंचा पर्व के आयोजन अवसर पर सम्पूर्ण बस्तरवासियों की भागीदारी धार्मिक एकता का परिचायक है। इसके बाद प्रारम्भ होता है प्रत्येक गांवों में मण्डई मेले का आयोजन। दियारी तिहार मनाने के बाद धान की फसल कटने की खुशी में मण्डई का आयोजन होता है। बस्तर में मण्डई का आयोजन माघ महीने से चैत महीने तक किया जाता है।

यहां मनाये जाने वाले मण्डई प्रायः एक दिवसीय एवं साप्ताहिक होते हैं। नारायणपुर एवं कोण्डागांव की मण्डई सात दिनों तक तथा दन्तेवाड़ा की प्रसिद्व फागुन मण्डई सर्वाधिक नव दिनों तक आयोजित होती है।

बस्तर में सर्वप्रथम केशरपाल की मण्डई आयोजित होती है। इसके पश्चात करपावण्ड, जैबेल, लोहण्डीगुड़ा, धाराऊर, घोटिया, बस्तर, चित्रकोट आदि स्थानो में मण्डई आयोजित की जाती है। अंचल के नारायणपुर की मण्डई प्रसिद्व है। यहां एक सप्ताह मण्डई का आयोजन होता है। बदलते परिवेश में भी यहां के मण्डई का आकर्षण बरकरार है। कोण्डागांव के साप्ताहिक मेले में भी अंचल के ग्रामीण मण्डई देखने आते हैं एवं पारम्परिक आभूषण,बर्तन एवं अन्य सामग्री क्रय करते हैं। अंचल में चपका की मण्डई भी प्रसिद्व है। साठ और सत्तर के दशक में यहां वृहद् रूप में मण्डई आयोजित होती थी। चपकेश्वर धार्मिक आस्था का केन्द्र होने के कारण आज भी यहां पारम्परिक रूप से मण्डई का आयोजन होता है। दन्तेवाड़ा जिले के घोटपाल से मण्डई प्रारंभ होकर फरसपाल, नकुलनार, पालनार, कटेकल्याण तथा मेटापाल के साथ साथ अन्य गांव में भी परम्परानुसार हर्ष और उल्लास पूर्ण माहौल में मण्डई आयोजित होते हैं। बैलाडीला के तराई में आकाश नगर की ऊंची पर्वत श्रृखंलाओं के ऊपर लोहागांव के समीप स्थित तालाब देवी की पूजा आराधना पश्चात मण्डई आयोजित होती है। सुकमा क्षेत्र में रामाराम का मेला प्रसिद्व है। जगदलपुर में जिस तरह से छः सौ वर्षों से भी अधिक समय से ऐतिहासिक दशहरा पर्व का आयोजन होता है उसी के अनुसरण में दन्तेवाड़ा में प्रसिद्व फागुन मण्डई दन्तेश्वरी माई की छत्रछाया में मनाई जाती है। दोनों जगह ग्राम्य देवताओं का सम्मान पूर्वक आमंत्रण एवं विदाई होती है। सदियों से पारम्परिक विधि विधानों से पर्व के आयोजन ने रियासत कालीन काकतीय राजवंश परम्परा को निरंतर अक्षुण बनाये रखा है। आज भी रियासत कालीन वेशभूषा, वाद्ययंत्रों की धुन बस्तर के दशहरा और दन्तेवाड़ा के फागुन मण्डई में देखने सुनने को मिलती है। निश्चित रूप से फागुन मण्डई ने दन्तेवाड़ा के महत्व को बढ़ाया है। बस्तर अंचल के जिला कांकेर में छत्तीसगढ़ी बोली के प्रभाव के फलस्वरूप मण्डई–मेले के स्वरूप में परिवर्तन नजर आता है। वहीं जिला सुकमा एवं बीजापुर के मेलों में सीमावर्ती प्रान्तों उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश एवं महाराष्ट्र का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। माह जनवरी में बीजापुर क्षेत्र के ग्राम जयतालूर में कोदई माता की पूजा आराधना कर मण्डई आयोजित की जाती है। बीजापुर में चिकटराज, भैरमगढ़ में भैरमबाबा, मद्देढ़ में रामनवमी ग्राम्य देवी देवताओं की पूजा आराधना कर माह अप्रैल में मण्डई का आयोजन किया जाता है।

प्रतिवर्ष माह जनवरी, फरवरी में मनाये जाने वाले बस्तरिया मण्डई का सीधा सम्बन्ध ग्राम्य देवी देवताओं से है। देवी देवताओं की माटी बस्तर के प्रत्येक गांव में ग्राम्य देवी देवताओं का वास होता है। यहां देवालय को देवगुड़ी कहते हैं। ग्राम्य देवी देवताओं की पूजा अर्चना विभिन्न अवसर पर की जाती है। मण्डई मेले के अवसर पर इनका विशेष मान सम्मान होता है। मण्डई के दिन सिरहाओं को देवी आरूढ़ होती है। उनके गले में प्रायः हजारी फूल की माला अर्पित की जाती है। अक्षत, चंदन, धूप, दीप, अगरबत्ती, नारियल आदि से देव पूजन किया जाता है। उनका पारम्परिक श्रृंगार किया जाता है। नगाड़ा, ढोल, तुड़बड़ी एवं मोहरी के वाद्य धुन देवपाढ़ में देवता थिरकने लगते हैं और हर्षित होकर झूम उठते हैं। इस अवसर पर मन्नतें भी मांगी जाती है। मन्नतें पूरी होने पर देवताओं को विभिन्न सामग्री अर्पित करने का विधान है। इस अवसर पर बकरे आदि की बली भी दी जाती है। मंदिर में पूजा पाठ के पश्चात छत्र, चंवर, देव लाठ, आंगा देव आदि के साथ मण्डई में देवतागण बिहरने (भ्रमण करने) लगते हैं। स्थानीय वाद्य धुन, शंख एवं डंका से वातावरण उल्लास मय हो जाता है। इसके पश्चात मण्डई के प्रमुख रास्ते से गुजरता हुआ देव जुलूस देवगुड़ी की ओर लौटता है। रास्ते में उनका स्वागत सत्कार किया जाता है। श्रद्वालुओं द्वारा देवताओं से आर्शीवाद ग्रहण किया जाता है।

बस्तर में आयोजित किये जाने वाले मण्डई धार्मिक आस्था एवं उल्लास का पर्व है। ऐसा पर्व जो वर्ष में एक बार आता है और अनेक स्मृतियों को अक्षुण बनाए रखता है। साथ ही युवाओं के मिलन का यह सुनहरा अवसर होता है। मेहमानों के साथ मण्डई में घूमने का आनंद ही कुछ और है। दिन में विभिन्न दुकानें सजती है एवं लोग खरीददारी करते हैं। मण्डई के होटलों में बनी सामग्रियों के अतिरिक्त बस्तर का पारम्परिक मिष्ठान गुड़िया खाजा के साथ कदली (केला) चिवड़ा, गुड़, चना, लाई आदि खूब बिकता है। साठ और सत्तर के दशक में बड़े शहरों में "मीना बाजार" का आयोजन होता था किन्तु वर्तमान में मण्डई मेलों में "मीना बाजार" सर्वाधिक आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। वर्तमान में रात के समय "मीना बाजार" मण्डई – मेलों में चार चांद लगा रहे हैं। साथ ही अंचल के लोक प्रिय छत्तीसगढ़ी नाचा पार्टी ने भी दर्शकों का मन मोह लिया है। प्राचीन समय में हाथ से चलाए जाने वाले लकड़ी के झूलों के स्थान पर वर्तमान में विधुत से चलने वाले ऊंचे और धुमावदार झूलों ने युवाओं के उत्साह को बढ़ाया है। मेलें में महिलाओं के सौंदर्य प्रसाधन की सामग्री के अतिरिक्त सोने एवं चांदी आदि के गहने, कांसा, तांबा, जर्मन, स्टील के बर्तन, चीनी मिट्टी, काष्ट, प्लास्टिक, लोहे की वस्तुएँ, वस्त्र, जूते, खिलौने, फूल, गुलदस्ते आदि दैनिक आवश्यकताओं के समस्त सामग्रियां मौजूद रहती हैं। मेले में खेल, तमाशे के आयोजन अब भी हुआ करते हैं किन्तु इस ओर लोगों का रूझान कम हुआ है। बच्चों में आधुनिक खिलौने का प्रचलन बढ़ा है।

प्रायः मध्य बस्तर में आयोजित होने वाले मण्डई के रात का मुख्य आकर्षण होता है उड़ीया नाट। संध्या से नाट्य मंच की रावटी सजने लगती हैं। बांस के चार खम्बों पर आधारित रावटी (मंच) खड़ा कर खम्बों में हरे छिन्द कांटे बांधे जाते हैं। इन कांटों में हजारी फूल खोंचे जाते हैं जिससे मंच की शोभा बढ़ जाती है। बस्तर अंचल में उड़ीया नाट मनोरंजन का प्रमुख साधन है। आधुनिक परिवेश में भी पारम्परिक लोक नाटक का आकर्षण कम नही हुआ है। प्राचीन शैली के इस नाट को आज भी लोग उसी अंदाज मे देखते हैं जैसे साठ और सत्तर के दशक में लोग देखा करते थे। नाट दल का प्रमुख नाटगुरू होते हैं सम्मानजनक पद पर होने के कारण उनका आदर सत्कार किया जाता है। नाटदल के सभी सदस्य उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। क्षेत्रीय वेशभूषा के अनुरूप लम्बे बाल, कानों मे बाली और धोती, कुर्त्ता पहने हुये व्यक्ति को हम नाटगुरू के रूप में कल्पना कर सकते हैं। गुरू चाहे जो भी हो वह पूज्यनीय होता है। नाट्य कला में पारंगत गुरू की महिमा अपरम्पार है। वह अपने पात्रों को नाटकला का प्रशिक्षण देकर उन्हें महारथ हासिल करवाता है।

इस नाट का प्रार्दुभाव हमारे पड़ोसी राज्य उड़ीसा से हुआ है, जिसका प्रभाव सीमावर्ती अंचल के साथ मध्य बस्तर में देखने को मिलता है। नाटगुरू मंच पर खड़ा रह कर यह आयोजन करवाता है। वाद्य दल उसके पीछे बैठते हैं। मंच के सामने दोनों किनारे दर्शक बैठते हैं। नाट स्थल पर नाटगुरू कथा वाचन के साथ गीत प्रस्तुत करता है जिसे वाद्य दलों द्वारा दुहराया जाता है, इसे श्रवण कर पात्र नृत्य करते हैं। प्रायः गणेश वंदना और गणेश पात्र के नृत्य से नाट का शुभारम्भ होता है। निकटवर्ती रूप सज्जा स्थल से पात्र को चादर की आड़ में मंच की ओर ले जाते वक्त शंख, डंका बजाया जाता है। मंच के प्रवेश द्वार में पहुंचने पर पात्र के सामने से चादर हटा दिया जाता है तद्पश्चात पात्र नृत्य अथवा अभिनय करता हुआ मंच की ओर बढ़ता है। बस्तर अंचल में बहुचर्चित नाट 'मुन्दरा मांझी' का मंचन प्रमुखता से किया जाता है। इसके मुख्य पुरूष पात्र 'मुन्दरा मांझी' एवं महिला पात्र 'मैनाबती' कहलाते हैं। अंचल का यह पारम्परिक लोक नाट ग्रामीणों के लिए कितना रोचक होता है इसका अदांजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि दर्शक रात्रि 9.00 बजे से प्रातः सूर्योदय तक निरंतर बैठकर नाट का आनंद लेते हैं।

इस नाट की विशेषता यह होती है कि दर्शक मात्र दर्शक नही होता बल्कि अभिनय कला का सही आकलन करने वाला भी होता है। अच्छे अभिनय पर दर्शक द्वारा पात्र को खुशी से पुरस्कृत भी किया जाता है। दर्शक द्वारा अभिनयकर्त्ता के कुर्त्ते में पैसे (नोट) खोंच कर इनाम दिया जाता है, जिसे 'मेंटल मारना' कहा जाता है। इनाम दिये जाने वाले व्यक्ति के नाम की उद्घोषणा भी की जाती है। नाट में महिला पात्र की भूमिका पुरूष द्वारा अदा की जाती है। नाटक के पात्र पारम्परिक वेशभूषा पहन कर अभिनय करते है। मण्डई स्थल पर कई नाट का आयोजन होता है। नाट में प्रतिस्पर्धा भी होती हैं जिसका आंकलन प्रायः पात्रों के अच्छे अभिनय तथा नाट स्थल पर सर्वाधिक भीड़ को दृष्टिगत रखते हुये किया जाता है।

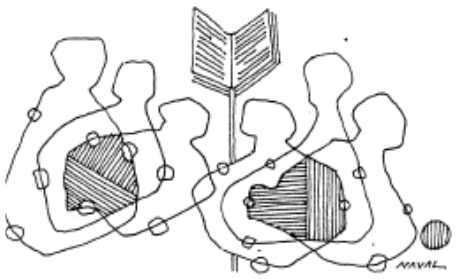

अज्ञेयः अन्वेषी पत्रकारिता के समर्थ शिल्पी

डॉ. पी.एन.द्विवेदी
257–रामबाग गाँधीनगर,
बस्ती (उ0प्र0)
पिन–272001
मो0नं0–09451670475

अज्ञेय जी का जन्म फागुन शुक्ल सप्तमी, संवत 1967 यानी 07 मार्च 1911 ई0 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद के 'कसया' नामक स्थान में एक पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ। अज्ञेय के पिता पं0 हीरानंद शास्त्री भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में उच्च अधिकारी थे। संस्कारी और स्वाभिमानी प्रकृति वाले पिता, तत्कालीन स्कूली शिक्षा से आश्वस्त नहीं थे, फलतः अज्ञेय की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। संस्कृत पंडित से रामायण, रघुवंश, हितोपदेश आदि पढ़ा, मौलवी से फारसी से सादी आदि को तथा अमेरिकी पादरी से अंग्रेजी पढ़ी। बाल्यावस्था के कुछ वर्ष लखनऊ, श्रीनगर और जम्मू में बीते। सन् 1919 में पिता के साथ नालंदा, फिर वहां से पटना गए।

हिन्दी भाषा का संस्कार अज्ञेय ने पिता से ही प्राप्त किया, जो समय के साथ निरंतर बढ़ता रहा। अंग्रेजी अच्छी तरह सीख लेने पर अंग्रेज और अंग्रेजी दोनों के प्रति उनके मन में वितृष्णा पैदा हो गई।

सन् 1921 से 1925 तक दक्षिण में नीलगिरी में रहे और यहीं उन्होंने अपने पिता के सम्पन्न पुस्तकालय का भरपूर सदुपयोग किया। यही पर किशोर कवि का परिचय मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक और हरिऔध की कविताओं से हुआ, जिसका गहरा प्रभाव अज्ञेय पर पड़ा। इन कवियों के प्रभाव के चलते उन्होंने छंदो का खूब अभ्यास किया। इनकी पहली कविता लाहौर में अपने कॉलेज की पत्रिका में पहली कहानी एक बालचर पत्रिका 'सेवा' में छपी। अज्ञेय ने अंग्रेजी गीतांजलि के प्रभाव में उसी ढंग के कुछ रहस्यवादी गद्य गीत लिखें, जो कभी छपे नहीं और जेल प्रवास के दौरान खो भी गए। लाहौर के 'फार्मन कॉलेज' में बीएससी की पढ़ाई के दौरान ही वे 'नौजवान भारत सभा' के संपर्क में आये और एक गुप्त युवा क्रांतिकारी दल का गठन किया, जो 1929 में 'हिन्दुस्तान सोसलिस्ट पब्लिक आर्मी' में मिल गया, तब तक वे बीएससी पास करके एमए अंग्रेजी (प्रथम वर्ष) में प्रवेश ले चुके थे। वह पढ़ाई कभी पूरी नहीं हुई, क्योंकि उनका क्रान्तिकारी जीवन आरंभ हो गया था, जो 1936 तक चला। 1930 में बम बनाने के सिलसिले में गिरफ्तार किए गए। पुनः दिल्ली षड्यंत्र केस में कालकोठरी में बंद रहे। इसी जेल जीवन की गहरी यंत्रणा और संघर्ष के दौरान 'चिंता' की सारी कविताएं और 'शेखर एक जीवनी' भी लिखी गई। इस सात वर्ष की इस अवधि को डॉ0 विद्या निवास मिश्र ने 'भट्ठी में गलाई' की अवधि कहा है।

इसके बाद सन् 1936 में 'सैनिक' के संपादन मंडल में नियुक्त हुए, वहां साल भर रहे। सन् 1937 से 1939 तक 'विशाल भारत' में काम किया। सन् 1943 से दिल्ली में अखिल भारतीय फार्मासिस्ट विरोधी सम्मेलन का आयोजन किया। सन् 1940 में उन्होंने दमयंती से सिविल मैरिज की, जो जल्दी टूट गई। इसके पश्चात् उन्होंने एक अप्रत्याशित निर्णय लिया–सुरक्षात्मक युद्ध की अनिवार्यता में अपने विश्वास को प्रमाणित करने के लिए अंग्रेजी सेना में भर्ती हो गए। वे सन् 1945 तक 'कोहिमा' फ्रंट पर कार्यरत थे। अब तक इनके तीन कविता संग्रह – 'भग्नदूत', 'चिंता' और 'इत्यलम', तीन कहानी संग्रह– 'विपथगा', 'परंपरा', और 'कोठरी की बात' तथा उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' छप चुके थे।

हिन्दी कविता के आधुनिक दौर की शुरूआत अज्ञेय द्वारा सन् 1943 में संपादित तारसप्तक से हो चुकी थी। तब से लेकर मृत्युपर्यंत उनकी साहित्यिक यात्रा चलती रही। मार्च 1947 में अज्ञेय इलाहाबाद आए और 1950 तक वहीं रहकर 'प्रतीक' का संपादन करते रहे। 1950 में दिल्ली चले गए और रेडियो की नौकरी करते हुए दो वर्ष तक 'प्रतीक' अकेले अपने बलबूते पर निकाला। सन् 1952 से 1955 तक उन्होंने भारत के विभिन्न कला क्षेत्रों, विशेष रूप से दक्षिण भारत की यात्रा की। इस बीच कपिला मलिक से उनका प्रेम हुआ और 07 जुलाई 1956 का उनके साथ विवाह सम्पन्न हुआ। इस बीच सन् 1949 में 'हरी घास पर क्षण भर', सन् 1951 में 'दूसरा सप्तक', सन् 1954 में 'बावरा अहेरी' तथा उपन्यास 'नदी के द्वीप' और यात्रावृत्तांत 'अरे यायावर रहेगा याद' भी छपा। सन् 1955 में 'यूनेस्को' के निमंत्रणपर अज्ञेय यूरोप भ्रमण पर चले गए। 'एक बूंद सहसा उछली' नामक पुस्तक इस यात्रा की परम उपलब्धि है। इस प्रवास की अवधि में ही 'इंद्र धनु रौदें हुए ये' की कविताएं लिखी गई, जो 1957 में छपीं। फिर एक–दूसरे निमंत्रण पर अज्ञेय जी जापान गए और सन् 1958 में वहां से लौटे। इनका प्रभाव अज्ञेय की आधुनिकता और भारतीयता संबंधी लेखन में साफ झलकता है। सन् 1960 में दूसरी बार यूरोप की यात्रा पर निकल पड़े। इस दौरान उन्होंने मसीही संस्कृति की साधना की गहराइयों में गोता लगाया। फ्रांस में वे रूढ़ीवादी पादरी पियरे दनियेलू से मिले और एक महीने तक 'पियरे कि वीर' में मठ में रहे। मसीही संस्कृति को जान लेने के बाद उनमें हिंदू धर्म के प्रति आकर्षण और बढ़ गया। आनंदकुमार स्वामी के चिंतन, रामकृष्ण परमहंस के अनुभव तथा विवेकानंद के उत्सर्ग ने उन्हें गहरे प्रभावित किया। संत कवियों में कबीर, सूर, मीरा ने उन्हें समृद्ध किया। सन् 1961 में वे केलीफोर्निया विष्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति

और साहित्य के अध्यापक नियुक्त हुए। इसी अवधि में 'आंगन के पार द्वार' कविता संग्रह तथा 'अपने–अपने अजनबी' उपन्यास छपे। 'आंगन के उस पार' कविता संग्रह पर उन्हें अकादमी पुरस्कार भी मिला। सन् 1964 में स्वदेश लौटने पर उन्हें दिल का दौरा पड़ा और वे महीनों अस्पताल में रहे। सन् 1964 में उनके परम आत्मीय मित्र गजानन माधव मुक्तिबोध तथा आदरणीय दद्दा मैथिलीशरण गुप्त की मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। सन् 1965 में ही उनके छोटे भाई पूर्णानंद की असामयिक मृत्यु ने उन्हें अंदर से तोड़ा दिया। इसके बावजूद उन्होंने सन् 1965 में 'दिनमान' साप्ताहिक का कार्यभार संभाला और छह महीने के भीतर उसे शिखर पर पहुंचा दिया। इस बीच उन्होंने कई बार विदेश यात्राएं कीं। सन् 1969 में 'दिनमान' से अलग हो गए और केलीफोर्निया विश्वविद्यालय वर्कले पुनः लौट गए। सन् 1965 के बाद उनके दो कविता संग्रह 'सुनहले शैवाल' और 'कितनी नावों में कितनी बार' प्रकाशित हुए। 'कितनी नावों में कितनी बार' पर उन्हें सन् 1978 में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।

साहित्य और पत्रकारिता की जो दूरी आज है, वह पहले न थी। प्रायः साहित्यकार ही पत्रकार भी हुआ करते थे। इसलिए उनकी पत्रकारिता में गहरी मानवीय संवेदना निहित रहती थी। अज्ञेय जी भी इसी परंपरा के पत्रकार थे।

सबसे पहले सन् 1936 में वे मेरठ से निकलने वाले 'सैनिक' के संपादक मंडल में नियुक्त हुए और साल भर तक रहे। इसके पश्चात् सन् 1937 में बनारसी दास चतुर्वेदी के आग्रह पर कलकत्ते से निकलने वाले 'विशाल भारत' में डेढ़ वर्ष तक रहे।

सन् 1947 में उन्होंने इलाहाबाद से 'प्रतीक' नाम प्रसिद्ध साहित्यिक त्रैमासिक निकाला। प्रतीक के माध्यम से उन्होंने कला, संस्कृति के क्षेत्र में अभिव्यंजना का नया संदेश देने का प्रयास किया। यही नहीं उन्होंने नई पीढ़ी के साहित्यकारों और चिंतको को आगे बढ़ाने का कार्य भी किया। सन् 1947 से 1952 तक 'प्रतीक' चला, पर उसका स्तर कभी गिरा नहीं।

सन् 1965 में अज्ञेय जी के 'दिनमान' साप्तहिक का संपादन आरंभ किया, यद्यपि इसके लिए उन्हें अपने घर–परिवार तथा दोस्तों–मित्रों का विरोध सहना पड़ा। घर परिवार के लोग इसलिए विरोध कर रहे थे उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। बाहरी यानी दोस्त–मित्र इसलिए विरोध कर रहे थे कि पत्रकारिता साहित्य के लिए बाधा स्वरूप है। पर अज्ञेय जी संपादन के लिए वचनबद्ध हो चुके थे, किसी को स्वीकृति देकर वे उससे मुकरना नहीं चाहते थे। दूसरी खास बात यह थी कि वे हिन्दी पत्रकारिता के स्तर को उठाना चाहते थे। दरअसल वे इस क्षेत्र में नया प्रयोग करना चाहते थे। इसके अलावा एक और जबरदस्त कारण था कि 'अज्ञेय स्वातंत्र्योत्तर भारत में अपनी राष्ट्रीय प्रतिबद्धता का निर्वाह करने के लिए यह जरूरी समझने लगे कि गैरपेशेवर राजनैतिक मत का सामने आना आवश्यक हो गया है। पेशेवर राजनीतिज्ञों के हाथ में देश को सौंपकर चुपचाप बैठ जाना जनतंत्र के लिए वांछनीय नहीं है।'

कदाचित यही वे कारण हैं, जिनके चलते उन्होंने अपना समूचा संगठनात्मक सामर्थ्य, कल्पना और मनोयोग से दिनमान को संपादित किया। जिसके चलते छह महीने के भीतर ही उसे हिन्दी का नहीं, राष्ट्रीय स्तर का एक प्रतिष्ठित और विश्वसनीय पत्र बना दिया। हिन्दी पत्रकारिता से जुड़े लोगों के लिए अब उसे नजरअंदाज करना अंसभव हो गया। वस्तुतः दिनमान के माध्यम से अज्ञेय जी ने हिन्दी पत्रकारिता को नया और ऐतिहासिक आयाम दिया, जिसकी महत्ता आज भी लोग स्वीकार करते हैं। अंग्रेजी में 'टाइम' और 'न्यूज वीक' जैसी पत्रिका उसके बाद प्रारंभ हुई। यह अज्ञेय जी की अभिरूचि और दृष्टि का ही परिणाम था कि रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और प्रयाग शुक्ल जैसे साहित्यकार दिनमान से जुड़े और पत्रकारिता को एक नया भाषाई संस्कार दिया। 'दिनमान' ने न केवल गैरपेशेवर राजनैतिक दल को स्थान दिया, वरन् पाठकों को भी चौकन्ना और परिपक्व बनाया। न जाने कितने लोग दिनमान में दीक्षित होकर पत्रकार बने। 'दिनमान' में 'पिछले सप्ताह' कालम के अंतर्गत देश–विदेश की महत्वपूर्ण घटनाएं अति संक्षेप में किन्तु सटीक रूप में प्रस्तुत की जाती थी। 'चर्चे और चरखे' के अंतर्गत समसामयिक महत्वपूर्ण टिप्पणियां तलस्पर्शी विवेचना के साथ प्रस्तुत होती थीं। गंभीर विश्लेषण करता हुआ दृष्टिसम्पन्न 'संपादकीय' जिसमें समकालीन प्रमुख राष्ट्रीय– अंतराष्ट्रीय घटनाओं और संदर्भो को बिना लाग–लपेट के प्रस्तुत किया जाता था।

'दिनमान' के कार्यकाल में अज्ञेय की राजनैतिक प्रतिबद्धता के संदर्भ में तरह–तरह की बातें उठी। कोई उन्हें कांग्रेस सरकार का समर्थक तो कोई समाजवादी तो किसी ने कुछ और कहा। अज्ञेय जी ने इसकी कभी सफाई नहीं दीं, बल्कि 'दिनमान' की संपादकीय नीति अपने–आप धीरे–धीरे सामने उभरती गई। वस्तुत अज्ञेय की प्रतिबद्धता राष्ट्र के प्रति थी। राष्ट्र उनके लिए सांस्कृतिक इकाई थी, मात्र राज्य के रूप में संगठित इकाई नहीं। अज्ञेय जनतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास करते थे और अपने को संगठित अनुशासित समाज में रहने वाला प्राणी मानते थे। इसलिए वे किसी राजनैतिक दल के प्रति प्रतिबद्ध होने में कोई हीनता नहीं देखते थे, पर उनके लिए उनके समय में ऐसा कोई दल नहीं था, जिसके प्रति प्रतिबद्ध हुआ जा सके। उन्होनें हर क्षेत्र में संकीर्णता के विरूद्ध आवाज उठाई और देश के स्वाभिमान को जिस किसी व्यक्तव्य और नीति से चोट

पहुंचती हो, उसकी उन्होंने खासी मरम्मत की। यहीं नहीं उन्हें जहां कहीं भी राजनैतिक चिंतन में अस्पष्टता, असंगति और छल दिखाई पड़ा, वहां उन्होंने उसका पर्दाफाश किया। यह उनके दलविहीन चिंता का प्रमाण नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चिंतन का प्रमाण है। उन्होंने बिना किसी मुरव्वत के शासनतंत्र की विफलताओं की आलोचना की। तत्कालीन अकाल समस्या को लेकर भिखमंगी और आत्मतुष्टि की निंदा की है। इसी के साथ उन्होंने मानवीय संवेदनाओं के प्रति गहरी चिंता जताई है।

सन् 1967 के उत्तरार्द्ध में उन्होंने सूखाग्रस्त बिहार की यात्रा की। पत्रकार की हैसियत से नहीं, बल्कि एक संवेदनशील मनुष्य की हैसियत से। इस यात्रा का उद्देश्य गहरे मानवीय संकट का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करना था। साथ ही साथ इस प्रकार की परिस्थिति की भयावहता की ओर सफेदपोश और तटस्थ लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए उन्होनें तमाम मर्मस्पर्शी चित्र खींचे और दिल्ली में चित्रों की प्रदर्शनी लगाई। 'दिनमान' के माध्यम से उन्होंने यह प्रयन्त किया कि देश का पढ़ा–लिखा आदमी देश के ऐसे संकट को अपना संकट समझ सके। ऐसे संकट के प्रति शिक्षा देने वाले का भाव न रखकर संकट के लिए लज्जा और दुख का भाव रखे, इसकी जमीन तैयार की। अंततः उन्होंने सन् 1969 में 'दिनमान' त्याग दिया।

सन् 1972 में उन्होंने जय प्रकाश नारायण के आग्रह पर अंग्रेजी के एक नए वैचारिक साप्ताहिक 'एब्री मैन्स' का संपादकत्व ग्रहण किया, पर साल भर तक इस साप्ताहिक को एक निश्चित आकार देने के बाद उन्होनें अनुभव किया कि यद्यपि ऊपर से कागज पर संचालन एक स्वायत्त दिखने वाली संस्था का है, पर परिस्थितिवश भीतर से इसका प्रबंध क्रमशः एक व्यक्ति के हाथों में जा रहा है। 'एब्री मैन्स' की यह बदली हुई स्थिति उन्हें स्वीकार नहीं थी, इसलिए दिसंबर 1973 में वे इस पत्र से भी अलग हो गए। सन् 1973 में उन्होंने अपने मित्रों और सहकर्मियों से बात करके फिर से 'प्रतीक' के नए सिरे से निकालने की योजना बनाई। फलतः दिसंबर 1973 से 'नया प्रतीक' मासिक का प्रकाशन आरंभ कर दिया। बहुत से लोगों ने इसे तमाशे के रूप में लिया कि यह दो दिन चलेगा और फिर बंद हो जाएगा। कुछ लोगों ने अज्ञेय पर आक्रमण करने के लिए इसे एक नये मसाले के रूप में देखा था पर अधिकांश लोगों ने, जो खेमाबद्ध नहीं थे, 'नये प्रतीक' को नई आकांक्षाओं और नई प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में देखा।

सन् 1977 के अगस्त में उन्होंने दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादन का कार्यभार संभाला। उन्होंने हिन्दी दैनिक पत्रकारिता में अंग्रेजी दैनिक पत्रकारिता का विकल्प बनाने का प्रयास किया। उनके जमाने में नवभारत टाइम्स को अनदेखा करना मुश्किल हो गया था। सन् 1979 में उन्होंने नवभारत से अवकाश ग्रहण किया। इस तरह पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अज्ञेय जी का विशिष्ट योगदान हैं, पर उनके विराट साहित्यिक व्यक्तित्व के नाते उसे प्रायः अनदेखा कर दिया जाता है। आगे चलकर अज्ञेय जी ने ज्ञानपीठ की पुरस्कार राशि से 'वत्सल निधि' की स्थापना कर कला और साहित्य के प्रति उसे समर्पित कर दिया। अंततः 04 अप्रैल, 1987 को अज्ञेय जी हमेशा के लिए हसमे विलग हो गए।

काव्य

सौदा

घर और बाहर
गूंज रहे प्रार्थनाओं के स्वर
उधर सिरफिरे चंद, लुटेरे यह
वापसी की व्यवस्था से
बांट रहे खुशनुमा धरती
मन की बातों से
यकीन करो
किसानों, बच्चों की
मासूमीयत के सौदागर
सभी उन्मादी कौमी हैं
(मोबाइल पर मिला काव्य)

पूर्णचंद्र रथ
भोपाल मो.–08821806990

टेढ़े–मेढ़े रास्ते

पूनम की रात
मेला मंडई के बाद
लौट रही मां–बेटी साथ–साथ
दूर गांव घर
बेटी खोई चांद पर
टेढ़े–मेढ़े रास्ते का संकेत
दे रही मां।

– – –

मुझे चांद चाहिए

मुझे डर नहीं
वादों का अपवादों का
आपदाओं का विपदाओं का
ले चल हवा मुझे
समय की डोर पकड़
पतंग सा उड़ चल
सत्य की खोज कर
चांद तो मिलेगा ही।

उर्मिला आचार्य
सुभाष वार्ड
जगदलपुर जिला–बस्तर
छ.ग.
फोन–09575665624

हाइकु

बादल काला
हवा ले उड़ चली
बीज अकेला।

खेत याचक
आंखें प्रश्नवाचक
बरसो मेह।

तू मिलते ही
कूके बंजर भूमि
ओ बरसात।

हरित पत्ते
बादल सहलाते
पावस पाते।

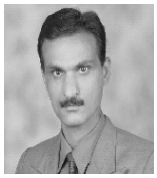

शरदचंद्र गौड़
सौरभ निवास
पथरागुड़ा
जगदलपुर जिला–बस्तर
छ.ग.
फोन–09424280807

चारों साथ ही बैठे, सुशीला ने बड़े ही सधे हाथों से पेग तैयार किये। नेताजी की नई पत्नी ने काजू एवं मिक्चर परोसा, फ्रिज से पानी की बाटल निकाली एवं गिलास में पानी डाला।

तुम दोनों भी बना लो स्माल–स्माल मन्नू ने कहा।

हमें नहीं चाहिये, फिर अब हम लोगों को पिलाने से क्या लाभ, हम तो बिना नशे के ही उपलब्ध हैं, नेताजी की पत्नी ने ओंठों को चबाते हुए कहा।

नहीं लेना तो फिर जाओ हम दोनों को बातें करने दो, मन्नू ने कहा।

वह दोनों वाकई उठ कर बेडरूम चली गईं।

दीदी निकालो वोदका हम दोनों भी लेंगे..इन दोनों ने ठेका थोड़े ही ले रखा है मजे करने का।

सुशीला ने आलमारी से वोदका और लिमका निकाला। लगता है दोनों ने अपनी व्यवस्था पहले से ही कर रखी थी। स्माल–स्माल नहीं दोनों ने पूरा पटियाला पेग बनाया और लिमका डाल कर चियर्स किया।

अब भी भाई साहब रोज पिलाते हैं क्या ? सुशीला ने पूछा।

शादी के पहले तो चोरी से कोल्ड ड्रिंक्स में मिलाकर पिलाते थे फिर मेरे नशे का बेजा इस्तेमाल करने से पीछे नहीं रहते थे पर अब कभी नहीं कहते, उल्टा कभी–कभी मेरा ही मन हो जाता है तो चुपके से ले लेती हूं।

कितने साल तक आप दोनों की कोर्टशिप चली सुशीला ने पूछा।

कोर्टशिप क्या थी, ये बस मेरे साथ मस्ती कर रहे थे, मैं भी अकल की अंधी अपना शोषण करवा रही थी। वह तो भला हो उस एम.एम.एस. का जिसके चक्कर में इनको मेरे साथ शादी करनी पड़ गई, पर अब मैं बहुत खुश हूं, ये मेरा बराबर ख्याल रखते हैं।

सब मर्द एक से होते हैं।

सब मर्द नहीं, सब नेता एक से होते हैं।

पर अब तो नेताओं की बीबियां भी कम नहीं रही, नेताजी की पत्नी ने वोदका का शिप लगाते हुए कहा।

सीधे बनकर रहें तो इनके साथ निभाना मुश्किल हो जायेगा, उससे तो अच्छा है इन्हीं के रंग में रंग जाओ। सुशीला ने कहा।

सही कहा दीदी शेर के लिए सवा शेर बनना ही पड़ता है।

मैं सांसद महोदय के निवास पर गई थी, उनसे एवं उनके परिवार से मिलकर अच्छा लगा, उनकी पत्नी वात्सल्या एवं बेटी बहुत ही अच्छे लगे। सभी नेता हमारे पतियों के समान नहीं होते। मैं उनकी पत्नी वात्सल्या जैसा बनना चाहती हूं, सुशीला ने कहा।

दीदी मैं भी यही प्रयास कर रही हूं, आज मेरे पति की पहली पत्नी के बच्चे तक मुझे सम्मान दे रहे हैं, बड़ा बेटा बारहवीं में पढ़ रहा है मुझे छोटी मम्मी कहकर बुलाता है और मेरे दिये बिना खाना तक नहीं खाता।

दोनों ने अपने सुख–दुख बांट लिये, यही दुनिया है।

इधर एक–एक पैग तक नेताजी और मन्नू में एक शब्द तक बात नहीं हुई। मन्नू ने एक–एक पैग और तैयार कर दिया।

उसने नेताजी से कहा भाई साहब मुझे समय से पहले बहुत कुछ मिल गया, मैं आपका राजनीतिक प्रतिद्वंदी नहीं बनना चाहता। अभी मुझे विधायक बनने की जल्दी नहीं है। मंत्री का ओहदा हासिल कर ही लिया है। पर यदि आप सांसद का चुनाव लड़ेंगे तब ही मैं आप की जगह यहां से विधायक का चुनाव लड़ूंगा।

क्या बताऊं भाई संसद में सब अंग्रेजी में बात करते हैं और मुझे अंग्रेजी का 'आ' भी नहीं आता। मैं तो पिछले चुनाव में ही सांसद बन गया होता। पर अब तैयार हूं। देखो मेरे पास एक योजना है, पहले विधानसभा चुनाव होने हैं, मैं विधानसभा का चुनाव लड़ूंगा, तुम मेरा समर्थन करना। मुझे मंत्री बना दिया गया तब तो ठीक है, नहीं तो छह माह बाद होने वाले लोकसभा चुनाव मैं लड़ूंगा, तुम मेरे द्वारा खाली की गई विधानसभा की सीट से चुनाव में खड़े होना।

यदि आप को मंत्री बना दिया गया तब ?

तुम्हे लोकसभा चुनाव लड़ायेंगे।

मन्नू भंडारी जायेगा मंगल पर

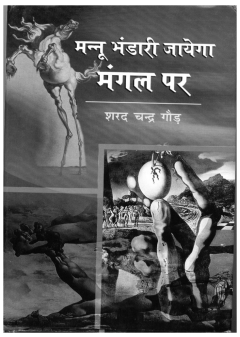

व्यंग्य और हास्य के बीच एवं बारीक रेखा होती है जो सामान्यतः नहीं देख पाते हैं और इस कारण ही इन दोनों शब्दों को पर्यायवाची समझ लिया जाता है। वस्तुतः यह भिन्न अर्थ के शब्द हैं। यह सत्य 'मन्नू भंडारी जायेगा मंगल पर' के लेखक ने अच्छी तरह समझ ली है और राजनीति के भीतर की मैली, गंदली दुनिया दिखा दी है। देश की राजनीतिक व्यवस्था की पोल खोलता यह व्यंग्य उपन्यास अपनी विशिष्ट शैली और गहरी मार के कारण पठनीय है।

मन्नू भण्डारी जो कि कुछ नहीं था। जो कुछ न बन सका वह राजनीति में चमक गया, स्पष्ट संदेश देता है कि भारत का राजनीतिक परिदृश्य किस कदर विद्रूप है।

जहां कुछ ज्यादा मेहनत करने वाला कहां तक पहुंच जाता है इसके लिए शिक्षा किसी भी प्रकार से जरूरी नहीं है। बीएससी थर्ड डिविजन मन्नू, सरपंच बनकर राजनीति की जिस प्रकार सीढ़ियां चढ़ता जाता है एक सपने की तरह लगता है। पर है तो सच! राजनीति के वृक्ष में लटकने वाले, चिपकने वाले, रेंगने वाले, लिपटने वाले सभी का उद्धार हो ही जाता है। चपरासी देवनाथ और उसकी पत्नी राजेश्वरी कहां से कहां पहुंच जाते हैं वह भी मात्र राजनीति के वृक्ष मे चिपक जाने से। कामवाली श्यामली बर्तन झाड़ू करते हुए मंत्री जी की खास बन जाती है।

इस व्यंग्य उपन्यास में एक और राजनीतिक सच्चाई उजागर होती है और वह है राजनीति में महिलाओं की स्थिति! महिलाओं को अपनी दुकान चलाने का औजार बनाया जाता है उनके रूप–सौन्दर्य का उपयोग अपनी जरूरतों की पूर्ति और अपनी सीढ़ी बनाने के लिए होता है। उन्हें एक तरह से इन्नोसेन्ट मानकर चला जाता है पर वे उनकी गुरू निकलती हैं। वैसे भी आज की राजनीति, अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति और समाज के धन को निचोड़ने का जरीया होती हैं। इसलिए उन महिलाओं का वैसा बन जाना जरा भी अटपटा महसूस नहीं होता है बल्कि वर्तमान परिदृश्य में महिलाओं की आजादी के मायनों की पूर्णाहुति महसूस होती है। वहां के विधायक का अश्लील चरित्र होना राजनीति की चरित्रहीनता का ही विवरण है। इस राजनीति में आने वालों के लिए ही ब्रांडेड कपड़े, ब्रांडेड गिफ्ट, भुने काजू, मुर्गा, दारू उपयोग में आते हैं, तो सोफे, सजे ऑफिस बोलेरो जैसी गाड़ी, ड्राइवर, आफिस अटेण्डेंट, एसी आदि के बिना उनका जीवन संभव नहीं है। इस राजनीति में जनता जनार्दन के दर्शन तो पल भर भी नहीं होते हैं यहां तो मात्र जुगाड़, सीढ़ी, ऐश और पेटी भरने का ही कर्म लगातार चलता है। हर कोई दूसरों में अपने लिए सीढ़ी की गुंजाइश खोजता है और गुंजाइश मिलते ही लग जाता हैं अपने आपको घुन साबित करने में। राजनीतिज्ञ का चपरासी भी कितना पावरफुल होता है यह देखा जा सकता है। अगर वह देवनाथ की तरह महत्वाकांक्षी न भी हो तो नोट पीटता है और खुद को शराब में डुबाकर अपनी पत्नी को आगे बढ़ाकर सहयोग करता है।

राजनीति में जुगाड़ के लिए एक दूसरे के नीचे की जमीन खींचना तो होता ही रहता है पर उनके साथ ही पैसे बनाने का धंधा भी चलता रहता है। बीएससी थर्ड डिविजन मन्नू का विज्ञान एवं तकनीक प्रचार–प्रसार निगम का अध्यक्ष बनकर राज्यमंत्री का दर्जा पा जाना, वहां के विधायक को गड़ते हुए भी कमाई का जरीया बना लेना उचित लगता है। कबाड़ सप्लाई करके कमाई करना दोनों को 'मजबूरी का दोस्त' बने रहने पर मजबूर करता है। साथ हजम किये पैसे फेविकोल की तरह जोड़कर रखते हैं। पंचायती राज व्यवस्था का सटीक चित्रण बताता है कि जमीनी हकीकत क्या है! सरपंच है मन्नू जो अपनी राजनीति चमकाने के चक्कर में अपने गांव में नहीं रहता है। सरपंची का काम संभालती है उसकी पत्नी सुशीला जो कि सरकारी नौकरी में भी है। सरकार ने प्रशासन का विकेन्द्रीकरण नहीं किया है बल्कि 'भ्रष्टाचार का विकेन्द्रीकरण कर दिया है अब कोई अकेला हजम नहीं करता है बल्कि बोटियों की बरसात होती है। ये बोटियां सरपंच, पंच, इनके ठेकेदार साथियों का मुंह बंद रखती है और सत्तारूढ दल का समर्थन करते रहने को प्रेरित करती है। भ्रष्टाचार की यह मलाई किस कदर छलक रही है मन्नू के उदाहरण से स्पष्ट है वह स्कूल का अतिरिक्त कक्ष अपनी बाड़ी में बनवा लेता है और उसके आधे हिस्से का खुद उपयोग करता है।

मन्नू भण्डारी के साथ चलने वाली मंगल ग्रह जाने की कहानी भी राजनीति में भ्रस्टाचार के चरम की कहानी है। यह कहानी विश्व स्तर चलने वाली राजनितिक संबंधों के भीतर की कालिमा को दर्शाती है। कैसे देशों के बीच संबंधों में दिखता कुछ है और होता कुछ है। दो करोड़ डॉलर प्रधानमंत्री को देकर मंगल अभियान के लिए तैयार किया जाता है। प्रधानमंत्री किस तरह पक्ष–विपक्ष को मैनेज करते हैं– इसका बड़ा सजीव चित्रण है।

मीडिया इस उपन्यास में अपने कपड़े उतारकर खड़ा है। वह अपने हित के लिए समाचार परोसता है मन्नू भंडारी की बारूद बांधकर राकेट की सवारी जो कि परले दरजे की नादानी और बेवकूफी थी, उसे मीडिया वैज्ञानिक खोज, साहस भरा

कदम और हीरोगिरी के रूप में प्रेषित करता है। मीडिया का यह चरित्र वर्तमान समय का वास्तविक चित्रण है। तिल का ताड़ बनाना और राई का पहाड़ बनाना मीडिया मैनेजमेंट से संभव है। अब तो मीडिया का नाम बदल गया है और हो गया है पेड मीडिया!

मंगल ग्रह में जमीन बेचने और कालोनी बनाने की योजना का प्रतीक लेकर शरद जी ने राजनीति, मीडिया और ठेकेदारों के गठजोड़ पर करारी चोट की है। इन तीनों की मिलीभगत से सपने बेचे जाते हैं वो भी मनचाही कीमत पर, ये बात भारतीय परिदृश्य में हर कोई समझने लगा है। उसके बाद भी इस जाल में फंसता ही है।

'मन्नू भंडारी जायेगा मंगल पर' व्यंग्य उपन्यास के भाषा पक्ष पर ध्यान देने पर पाते हैं कि सरल, सहज आत्सात कर लेने वाली भाषा का उपयोग शरद जी ने किया है। और यह बात आज के दौर में नितांत आवश्यक महसूस हो रही है। हमारे देश में तेजी से हिन्दी बोली में परिवर्तित होती जा रही है। यदि रचनाकार क्लिष्ट भाषा उपयोग करता है तो वह संप्रेषणियता से बाहर हो जाती है। इंटरनेट और मोबाइल के जमाने में सीमित शब्द ही बोले समझे जा रहे है। इस उपन्यास की यह खूबी ही देश के साहित्यिकारों के बीच इसे खुश्बू की तरह फैलायेगी। यह बात कई 'साहित्यविदों' को कमी की तरह महसूस हो सकती है।

इस प्रकार लेखक में अपनी प्रतिभा सटीक उपयोग कर ऐसी जबरदस्त व्यंग्य रचना का सृजन किया है, व्यंग्य विधा में उपन्यास लिख पाना स्वयं में एक उपलब्धि है।

पुस्तक का नाम–मन्नू भंडारी जायेगा मंगल पर, लेखक का नाम–श्री शरदचंद्र गौड़, प्रकाशक का नाम–यश पब्लिकेशन,

काव्य

शहरों से होड़ लेता गांव

गांव अब नहीं रह गया गांव
शहरों से होड़ लेता फिर रहा है गांव।
सूरज की पहली किरणों के साथ
अब नहीं जागता गांव।
नहीं सुनाई देती बैलगाड़ी की
चरमर–चरमर चूं
ट्रैक्टर, बाईक के शोर से गूंज उठता है गांव।
चौपाल सूना है
नहीं होती अब दुनिया जहान की बातें
सुख–दुख की बातें
मंगलू की अनाथ बिटिया के बारे में
सब मौन हैं
होती है राजनीति की बातें
स्वार्थ की बिसात पर
सत्ता के शतरंज की शह और मातें
यही सब बातें
जाति–धर्म के नाम पर बंट रहा है गांव
गांव की गोरियां नहीं खिलखिलाती पनघट पर
नहीं थापती उपलें दीवारों पर
सिने तारिका से नकल कर
बनना चाहती हैं कोमलिका या रमोला सिकन्द
टी.वी. के सीरियलों में बुनती हैं झूठे स्वप्न
कोई यशोदा अब माखन नहीं बिलोती
कौन सुनता है अब बांसुरी ?
कन्हैया की बांसुरी से अनजान है गांव।

श्रीमती शैल चन्द्रा
प्राचार्य
रावणभाटा, नगरी
जिला–धमतरी छ.ग.
फोन–09424215994

सलवटें

सलवटें जब चादरों पर उभर आती हैं
तो लगता है
रात भर किसी ने
बैचेनी में करवटें बदली हैं
सलवटें जब किसी के कपड़ों में झलक जाती हैं
तो लगता है
बेचारा दीन–हीन गरीब
जिसकी हालत नहीं बदली है
सलवटें जब किसी माथे पर
सिमट आती हैं
तो लगता है
यही उसके जीवन की कहानी है
जो उसकी जवानी को बुढ़ापे में बदली है।

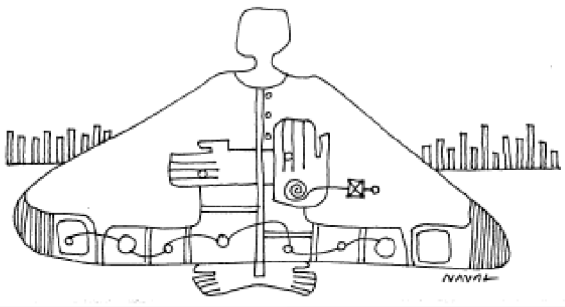

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं। चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है, और ऐसा सोचना पागलपन है।' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है। और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है। ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं। तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें।

शिक्षा के विषयों की समीक्षा फिर से की जाय। – आज जो शिक्षा दी जा रही है उसका व्यक्ति के जीवन से कोई तारतम्य नही है। देखिए कितना विरोधाभास है। शिक्षा दी जाती है कुछ विषयों पर, नौकरी लगती है तर्कशक्ति और जनरल नालेज पर और जीवन कटता है इन दोनों से अलग मेहनत और रोजी–रोटी के संदर्भों से! ऐसा तितर–बितर वातावरण बनाये रखने का उद्देश्य क्या है ? मात्र सक्षमों द्वारा लूटपाट जारी को छिपाये रखना ? आम जनता को रोजी–रोटी के सवाल पर उलझाये रखकर अपनी पेटी भर रहा है सक्षम समाज। जो व्यक्ति ईमानदारी से काम कर रहा है वह तो नेताओं अफसरों से निभ जाने की सोच भी नहीं सकता है। छोटे–मोटे भ्रष्टाचार से जनता खुश रहती है। और मानकर चलती है कि भ्रष्टाचार नहीं मिटाया जा सकता है। इस आम सोच की आड़ में कोई दो रूपये बचा रहा है तो कोई अरबों रूपये। शिक्षा के मायाजाल में उलझाकर जनता को हताश कर दिया गया है। कक्षा दस तक की शिक्षा के विषय वही हों जो आम जीवन में सदा काम आते हैं और नौकरियों में प्रवेश के लिए जरूरी हो।

उदाहरण स्वरूप गणित में जोड़–घटाना, गुणा–भाग, लाभ–हानि, ब्याज ही जरूरी होते हैं तो इनका अभ्यास दो वर्षों तक दो कक्षाओं में क्यों नहीं कराया जाता है ? क्यों बच्चों को सबकुछ सिखा लेने की जिद पाल रखी है। जिससे बच्चा हताश हो जाता है। कंम्प्यूटर शिक्षा जरूरी है बिजली एवं नल कनेक्शन लेने की प्रक्रिया, निवासप्रमाण पत्र बनवाने की प्रक्रिया, काम्पीटिटीव एक्ज़ाम की लिस्ट, गैस कनेक्शन लेने की प्रक्रिया आईटी रीटर्न भरने की प्रक्रिया आदि ऐसे अनेक कार्य हैं जो जीवन में निरंतर काम आते है इन्हें क्यों नहीं पढ़ाया जाता हैं ?

जो बच्चे घर में यूं ही कागज मोड़ना काटना, रंग भरना सीख जाते थे उन्हें स्कूलों में सिखाया जा रहा है। कोर्स की समीक्षा जरूरी है। पढ़ाई के घंटे कम करने की आवश्यकता है। बालमजदूरी के नाम पर बच्चों में कमाई के प्रति सोच को बंद कर देना कहां की होशियारी है ? जिन बच्चों के लिए बालमजदूरी समस्या हो सकती है उन्हें आश्रम में पढ़ाया जाये। बच्चों को बड़े होकर आखिर में जीवन यापन के लिए कमाना ही है तो उन्हें कमाने के प्रति सोच विकसित करने से रोकने का क्या औचित्य है ? आज के बच्चे डाक्टर, इंजीनियर, सीए से नीचे बनना नहीं चाहते है, जरा सा काम बोलो तो झट से पढ़ाई का बहाना बना देते हैं। ऐसे हसीन सपने बिखेर दिये गये हैं कि घर में बच्चों की मां उनके बचाव में आ खड़ी होती है। बच्चों को घर के काम भविष्य में नही करने पड़ेंगे क्या? बच्चों को पैतृक हुनर सीखना ही चाहिए क्योंकि दुनिया में जितने भी काम है वे सभी करे बिना जीवन नहीं चल सकता है। हमें हमारे पैतृक का मान बढ़ाना है और अपना लिविंग स्टैण्डर्ड बढ़ाना है, ये दोनों कैसे हो इसकी चिन्ता करनी चाहिए।

शिक्षा भारतीय जीवन शैली के अनुरूप हो क्योंकि 99 प्रतिशत लोगों को भारत में ही रहना है। शिक्षा पाकर बच्चों को इसी परिवेश में ही रहना है तो अंग्रेजों की शैली विकसित करने में सरकार सहयोग क्यों दे रही है ? बच्चे को भारत में ही रहना है तो यूरोप की कहानी पढ़कर क्या मिलेगा ? भारतीय दर्शन, भारतीय जीवन और भारतीय संस्कृति को जाने यही बहुत है। जिसे विदेश जाना हो वह विदेश जाये उसके लिए वह और पढ़े। पढाई के नाम पर बच्चों को सत्रह साल तक घसीटना कहां की बुद्धिमता है ?

जीवन में जो आवश्यक है वहां तक की पढाई पंद्रह साल की उम्र तक खत्म की जाये उसके बाद सीधे विशेषज्ञता वाली पढाई हो। कुछ के चक्कर में सभी को दौड़ाने का क्या मतलब है ? पढ़ाई के नाम पर बच्चों को शिथिल करके बीमार बनाने की क्या तुक है ? दसवीं तक की शिक्षा में बच्चा जीवन में आवश्यक सबकुछ जान जाये बस, ये हो शिक्षा। क्या सभी को सरकार डाक्टर बनने का या इंजीनियर बनने का अवसर दे सकती है ? न तो अवसर दे सकती है न ही संभव है न ही सभी को डाक्टर बनाने से समाज चल सकता है तो फिर बच्चा स्वतंत्र, ग्यारहवीं से जो पढ़ना चाहे वह पढ़े।

नौकरी में शामिल होने की, एक ही परीक्षा हो वो भी निशुल्क। दो बार या तीन बार परीक्षा देने का मौका मिले। इस प्रक्रिया के चलते नौकरी के लिए चालीस साल की उम्र तक अपने आप को किसी आस में डालकर जीवन यूं ही बिता देने की प्रक्रिया खत्म होगी। जीवन का अमूल्य समय बेकार ही नष्ट न होगा। सामाजिक परिवेश सुधरेगा। अभी इसी नौकरी के चलते

बच्चों की शादी तीस–बत्तीस–पैंतीस में हो रही है। उम्र के दूसरे दौर की आपाधापी में वह सोच नहीं पाता है पर जब वह साठ का होगा तो बच्चा बीस का। अगर बच्चा भी पैंतीस में नौकरी पाया तो व्यक्ति अपनी उम्र की पचहत्तरवें साल में अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होगा। ये कैसा घटिया भविष्य है ?

अठारह साल की उम्र तक बच्चा या तो नौकरी में या फिर धंधे में जायेगा, उसकी ऊर्जा का उपयोग होगा। नौकरी ढूंढने के चक्कर में मां–बाप–परिवार से दूर होता बच्चा उनके दिल से ही दूर हो जाता है। एक ओर तो ऊर्जा की आपूर्ति हमेशा बनी रहे इसके प्रयास लगातार चल रहे हैं और दूसरी ओर मनुष्य का ऊर्जायुक्त स्वर्णिम काल अनावश्यक विषयों में उलझाकर उसकी ऊर्जा को नष्ट करने पर जोर दिया जा रहा है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की समीक्षा नितांत आवश्यक है। कर्मयोगी बनाने की जगह बच्चों को अलाल और दूसरों पर राज करने की प्रवृत्ति पैदा करने की अग्रसर कर रही है यह शिक्षा! शिक्षा का पर्याय सरकारी नौकरी या नौकरी ही हो गया है। दूसरों के सीने पर चढ़कर राज करने वाला जीवन जीने की लालसा में अपने जीवन का बारह बजा देना कहां तक उचित है ? जीवन में कमाया इसलिए जाता है कि सही वक्त पर सही भोजन की व्यवस्था हो इसके लिए दुनिया भर का ताम–झाम किया जाना वह भी जीवन के एक तिहाई हिस्से में। जरा हम सब मिलकर विचार करें।

जीवन जीने की इस पद्धति के निर्माता हम हैं न कि यह प्राकृतिक पद्धति है। इसका हल जल्द से जल्द निकालना होगा वरना परिवार में दंतहीन व्यक्तित्य का परचम फैल जायेगा। मां–बाप अशक्त और बेटा करे नौकरी की मशक्कत!

वर्तमान हमारी सोच को इस कदर उलझा रखा है कि हमारे पास हमारे लिए ही सोचने का वक्त नहीं है। हम भीड़ में चलने की तरह चल रहे हैं औरों के धक्कों से। हमारी विचारधारा, हमारा व्यक्तित्व क्या हो यह भी हमें कोई लात मार कर सिखा रहा है। क्या यह उचित है ? क्या यह सब होना चाहिए ? 'हम' अनेक 'मैं' से मिलकर बना है इसलिए 'मैं' को जिन्दा रखकर हम अपना जीवन जीयें।

काव्य

खामोशी

साल–सरई
जंगल–खेत
घोटुल–मांदर–रेला गीत
सब खामोश
जिन्दगी खामोश
ऐसे में
सूरज कांपता
दे जाता है
सूनापन–
और गहरा जाती है–
शाम।
मंगलू के कोठार में
डोंगरी के वीरान में
लेकिन
खामोश सब खामोश
फिर
होता है धमाका–
गूंज उठती है
साल वनों की वादियां
थर्रा जाती हैं कुर्सियां
दौड़ती हैं गाड़ियां
चमकती हैं बत्तियां
लेकिन खामोश
सूरज हर दिन की तरह
उगता है फिर डूबता है
लेकिन–खामोश!
सब –खामोश!
आखिर कब टूटेगी
यह–
खामोशी

यशवंत गौतम
कोण्डागांव
जिला–कोण्डागांव,
छ.ग.
फोन–09407756565

पत्रिका मिली

हिन्दी चेतना
सम्पादक–सुधा ओम ढींगरा
मूल्य–50 रूपये
पता–पंकज सुबीर
पी.सी.लैब, सम्राट काम्पलेक्स
बेसमेंट, बस स्टैण्ड के सामने
सीहोर–466001
संपर्क–09977855399

अविराम साहित्यिकी
सम्पादक–डॉ.उमेश महादोषी
मूल्य–25 रूपये
पता–121इन्द्रापुरम, बीडीए
कालोनी के पास, बदायूं रोड,
बरेली उ.प्र.
संपर्क–09458929004

शब्द प्रवाह
सम्पादक–संदीप 'सृजन'
मूल्य–300 रूपये वार्षिक
पता–ए–99 व्ही.डी. मार्केट,
उज्जैन–456006 म.प्र.

जर्जर कश्ती
सम्पादक–ज्ञानेन्द्र साज
मूल्य–20 रूपये
पता–सम्पादक–जर्जर कश्ती
17/212, जयगंज,
अलीगढ़–202001
संपर्क–09219562656

दिवान मेरा
सम्पादक–नरेन्द्रसिंह परिहार
मूल्य–20 रूपये
पता–सी004, उत्कर्ष अनुराधा,
सिविल लाईन्स
नागपुर–440001
संपर्क–09561775384

शोध उपक्रम
सम्पादक–डॉ.रामकुमार बेहार
मूल्य–100 रूपये
पता–छत्तीसगढ़ शोध संस्थान,
370, बेहार मार्ग, सुन्दर नगर,
रायपुर–492001
संपर्क–09826656764

विचार वीथी
सम्पादक–सुरेश सर्वेद
मूल्य–25 रूपये
पता–17/297, पूनम कालोनी,
वर्धमान नगर, शिव मंदिर के पास
राजनांदगांव छ.ग.

वैश्य परिवार
सम्पादक–डॉ. श्रीहरि वाणी
मूल्य–25 रूपये
पता–92/143 संजय गांधी
नगर, नौबस्ता, कानपुर–208021
संपर्क–09450144500

साहित्यिक उठापटक

बस्तर क्षेत्र की साहित्यिक क्षति

छत्तीसगढ़ी गीत एवं कविता के विख्यात रचनाकार श्री हुकुमदास अचिंत्य का आकस्मिक निधन क्षेत्र को गहरे अवसाद से भर दिया। वे अनेक पत्र–पत्रिकाओं, अखबारों और स्थानीय गोष्ठियों में अपनी उपस्थिति लगातार बनाये रखते थे। उनसे मिलने वाले यह सोच कर आश्चर्य में पड़ जाते कि उनके भीतर इतनी अधिक निरन्तर ऊर्जा कैसे प्रवाहित होती है ? उनका सदा ही साहित्य से जुड़ा रहना ही उन्हें ऊर्जावान बनाए रखता था। उनकी सक्रियता का नमूना होती थीं उनकी कविताएं जिनमे वर्तमान की तमाम घटनाओं की तस्वीर दिखाई पड़ती थीं। उनकी रचनाओं से पता चलता था कि वे अपने राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के प्रति कितने संवेदनशील हैं।

उनकी रचनाएं हिन्दी, छत्तीसगढ़ी और हल्बी में समान रूप से होती थीं जो बताती थीं कि उनकी पकड़ इन सभी भाषा –बोलियों में थी। उनका कविता प्रस्तुति का ढंग विशिष्ट था जो सुनने वालों को आकर्षित करता था और साथ ही आनन्दित भी करता था। अपने सरल स्वाभाव के कारण सर्वप्रिय तो थे ही और लोगों की सहायता करने में भी हमेशा तैयार रहते थे।

उनकी रचनावली के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें उनकी साहित्यिक सिद्धहस्तता स्थापित होती है। ''डहर चलती है'' छत्तीसगढ़ी गीत संग्रह और ''रत्नावली'' हिन्दी काव्य संग्रह था। बस्तर पाति परिवार उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजली देता है और भविष्य में उनके रचनासंसार को साहित्य जगत में उजागर करने का निश्चय करता है। उनका जन्म 9 जून 1934 को हुआ था एवं 9 अप्रेल 15 को देहावसान हुआ।

कुण्डलिया संचयन प्रकाशन की सूचना

शीघ्र प्रकाश्य कुण्डलिया संकलन 'कुण्डलिया संचयन' आधुनिक छंद मुक्त कविता के दौर में प्राचीन भारतीय छंदों का चलन जैसे बीते युग की बात हो चली थी, ऐस में प्राचीन भारतीय छंदों को पुनर्जीवन प्रदान कर उन्हें पुनर्स्थापित करने में कई साहित्यकार बड़ी महत्तवपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। त्रिलोक सिंह ठकुरेला (जन्मः 1 अक्टूबर 1966 नगला मिश्रिया, हाथरस) सुपरिचित कुण्डलियाकार हैं। इन्होंने कुण्डलिया छंद को पुनर्स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है। राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत त्रिलोक जी ने कुण्डलिया छंद को नये आयाम देने का सराहनीय प्रयास किया है। कुण्डलिया छंद के उन्नयन के लिए इन्होंने रचनाकारों को प्रेरित कर 'कुण्डलिया छंद के सात हस्ताक्षर' और 'कुण्डलिया–कानन' का सम्पादन किया। 'कुण्डलिया छंद के सात हस्ताक्षर', 'कुण्डलिया–कानन' क बाद त्रिलोक जी द्वारा सम्पादित तीसरा कुण्डलिया संकलन 'कुण्डलिया संचयन' निकट भविष्य में साहित्य जगत के समक्ष होगा। कुण्डलिया संकलन 'कुण्डलिया संचयन' में सर्वश्री अशोक कुमार रक्ताले, डॉ.जगन्नाथ प्रसाद बघेल, डॉ.ज्योत्सना शर्मा, परमजीत कौर 'रीत' डॉ. प्रदीप शुक्ल, महेन्द्र कुमार वर्मा, राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन', राजेश प्रभाकर, शिवानंद सिंह 'सहयोगी', शून्य आकांक्षी, साधना ठकुरेला, हातिम जावेद, हीरा प्रसाद 'हरेन्द्र' और त्रिलोक सिंह ठकुरेला की कुण्डलियां संकलित हैं।

अखिल भारतीय बाल–साहित्य पुरस्कारों हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित

अ.भा. स्तर पर राष्ट्रकवि पं. सोहनलाल द्विवेदी बाल साहित्य पुरस्कार 2015 के लिए बाल साहित्य की किसी भी विधा की हिन्दी भाषा की पुस्तकें विचारार्थ भेजी जा सकेंगी। पुरस्कार राशि इक्कीस हजार रूपये मात्र है। यह पुरस्कार अब तक डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, डॉ. अजय जनमेजय, डॉ. आनंद प्रकाश त्रिपाठी, श्री गोविन्द शर्मा, श्री पुष्कर द्विवेदी, श्री संजीव जयसवाल, श्री घमण्डीलाल अग्रवाल एवं डॉ. कृष्ण कुमार आशु को प्रदान किया जा चुका है।

अ.भा. स्तर पर ही युवा बाल साहित्यकार सम्मान एवं वरिष्ठ बाल साहित्यकार सम्मान 2015 के लिए भी लेखकों से उपलब्धियों का विवरण आमंत्रित है। इन दोनों सम्मान की राशि पांच हजार रूपये (प्रत्येक) है।

यह जानकारी देते हुए पुरस्कारों के संस्थापक राजकुमार जैन 'राजन' ने बताया कि 'चंद्रसिंह बिरकाली राजस्थानी बाल साहित्य पुरस्कार 2015 हेतु लेखकों से राजस्थानी बाल साहित्य की कृतियां आमंत्रित हैं। इसकी पुरस्कार राशि पांच हजार रूपये मात्र है।

प्रविष्टि भेजने के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं है। सम्मानित रचनाकारों को सम्मान राशि, प्रतिक चिन्ह, श्रीफल, प्रशस्ति पत्र भेटकर, शाल ओढ़ाकर एक भव्य समारोह में सम्मानित किया जाएगा।

20 नवम्बर 2015 के बाद प्राप्त हाने वाली किसी भी प्रविष्टि पर विचार नहीं किया जाएगा।

पता है– राजकुमार जैन 'राजन', चित्रा प्रकाशन, आकोला–312205, चित्तौड़गढ़ राजस्थान

इस पते से अन्य जानकारियां जवाबी लिफाफा भेजकर मंगाई जा सकती हैं।

बस्तर पाति–साहित्य सेवा

''बस्तर पाति'' मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***''बस्तर पाति''*** का वादा है। रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***''बस्तर पाति''*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***''बस्तर पाति''*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***''बस्तर पाति''*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है। हमारा पता है–

सदस्यता फार्म

मैं ***''बस्तर पाति''*** हिन्दी त्रैमासिक का पंचवर्षीय सदस्य बनना चाहता हूं। कृपया मुझे सदस्य बनायें। मेरा नाम व पता निम्नानुसार है–

नाम–.....

पता–.....

.....

.....

.....

शिक्षा–.....**अन्य जानकारी**.....

.....

मोबाइल नं.–.....**ईमेल**.....

500/– (रूपये पांच सौ) नगद/ मनीआर्डर / अकाउंट नंबर 10456297588 एसबीआई जगदलपुर (आईएफएस कोड 00392) द्वारा भेज रहा हूं। दिनांक–

हस्ताक्षर

प्रति,

''बस्तर पाति''
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर जिला बस्तर छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति के लिए विज्ञापन दर

पत्रिका में स्थान	***दर प्रति अंक***
(मल्टीकलर)	
पिछला पेज	
पूरा	***10000/–***
आधा	***5000/–***
पिछले से पहला	
पूरा	***5000/–***
आधा	***3000/–***
मध्य के दो पेज पूरे	***20000/–***
(ब्लैक एण्ड व्हाइट)	
भीतर के पेज में कहीं भी	
पूरा	***2000/–***
आधा	***1000/–***
एक चौथाई	***500/–***
सभी पेज में नीचे एक लाइन की विज्ञापन पट्टी	***10000/–***

ध्यान रखिए, आपका सहयोग साहित्य एवं हिन्दी के प्रसार में उपयोग होगा।

कविता कैसे बदले तेरा रूप

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

घड़ी

घड़ी का लगातार चलना
हल्की टिक–टिक के साथ
दिल की घड़कन–सा
लगता है
घड़ी का रूप बदल जाय
भले ही
गुण और धर्म नहीं बदला
सेकण्ड, मिनट और घंटा
यही तो है उसके अंग
दिनभर घूम–घूम
लेती हाल–चाल
सेकण्ड की सुई
मिनट और घंटे भी
मिलते रहते
तीनों का मिलन भी
हो ही जाता

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

घड़ी

घड़ी का लगातार चलना
हल्की टिक–टिक के साथ
दिल की घड़कन–सा
लगता है
घड़ी का रूप बदल जाय
भले ही
गुण और धर्म नहीं बदला
सेकण्ड, मिनट और घंटा
यही तो है उसके अंग
दिनभर घूम–घूम
लेती हाल–चाल
सेकण्ड की सुई
मिनट और घंटे भी
मिलते रहते
तीनों का मिलन भी
हो ही जाता
इक साधु की तरह।

फेसबुक वॉल से

कुछ ऐसे हादसे भी होते हैं

कुछ ऐसे हादसे भी होते हैं
ऐ मेरे दोस्त जिन्दगी में
कि इंसान बच तो जाता है
मगर जिन्दा नहीं रहता....
हर पल मचलता रहता है
जहन में कई दर्द
सहता रहता है ताजिन्दगी
मगर कुछ कह नहीं सकता..
हंसने वाले तो मिल जायेंगे
लाखों उस पर
जो बांट ले उसके गम
वा मसीहा नहीं मिलता.....
वाह रे दाता तूने नाम इसका
इंसान रख दिया
चेहरे भी इनके हूबहू इंसान
लग रहे
दिल से मुझे कोई इंसां नहीं
मिलता....
पर दिल से मुझे कोई इंसा
नहीं मिलता...

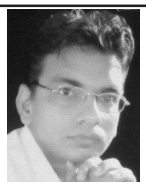

श्री संजीव लवनिया 'सजीव' की वाल से

माटी के लोग

काठ, पत्थर और
गारे से बने मकान
भूकंप सह न सके
ढह गये
उनमें सोये लोग सदा
के लिए सोये रह गये।
अब क्या है त्रासदी
के बाद वहां
न जीवन उल्लास
न जिजीविषा, न शोर
खामोशी
मरघट सी खामोशी
मलबे से निकले
कुचले हुए सपने
माटी के लोग
माटी हो गये
और.....
मैं सुन रहा हूं कबीर
के भजन
जग मुर्दन का गांव।
साधो जग मुर्दन का गांव।।

श्री प्रमोद जांगिड़ की वाल से

नज़्म

ये बारिश की बूंदें मुसलसल बरसती
निगाहों में कितनी असीसें उमड़ती
हरएक घर के आंगन की खुशहाली बारिश
महकते दिलों में है मतवाली बारिश
हवा के दरीचों में बूंदें थिरकतीं
सावन के झूलों में हीरें मचलतीं
है रांझे के दिल में शमा सी पिघलती
ये बारिश की बूंदें मुसलसल बरसती।
मुझे याद आती है बचपन की बारिश
वो कागज की कश्ती में नटखट सी बारिश
वो भुट्टों में सिंकती सोंधी सी बारिश
वो भीगे बदन में ठिठुरती सी बारिश
कहां है....कहां है वो बचपन की बारिश
मेरे जिस्मों–जां में भटकती सी बारिश
कहां है.....कहां है.....कहां हैं ?

संतोष श्रीवास्तव की वाल से

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः–

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः–

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री शशांक श्रीधर, जगदलपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री योगेन्द्र मोतीवाला, जगदलपुर
श्री जगदीश मोगरे, जगदलपुर
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः–श्रीमती जयश्री जैन जगदलपुर, श्रीमती रचना जैन जगदलपुर, श्री शमीम बहार जगदलपुर, श्री मनीष अग्रवाल जगदलपुर, श्री श्याम नारायण श्रीवास्तव रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा जगदलपुर, श्री महेश बघेल जगदलपुर, श्री नलिन श्रीवास्तव राजनांदगांव, श्री ऋषि शर्मा 'ऋषि' जगदलपुर, श्री विरेन्द्र कुमार मौर्य जगदलपुर, श्री टी आर साहू दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया कोण्डागांव, श्री निर्मल आनंद कोमा, राजिम, श्री कांति अरोरा बिलासपुर, श्री राजेन्द्र जैन भिलाई, श्री मिश्रा जी जगदलपुर, श्री नूर जगदलपुरी जगदलपुर, श्री हरेन्द्र यादव कोण्डागांव, श्री महेन्द्र यदु कोण्डागांव, श्री एस.पी.विश्वकर्मा कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि जगदलपुर, श्री जितेन्द्र भदोरिया जगदलपुर, श्री आर.बी. तिवारी महासमुंद, मे. होटल रेनबो जगदलपुर, श्री संजय मिश्रा रायपुर, श्री इश्तियाक मीर जगदलपुर, माहेश्वरी यदु जगदलपुर, श्री फिरोज बस्तरिया जगदलपुर, श्री रवि माहेश्वरी जगदलपुर, सुश्री सोनिया कुशवाह जगदलपुर, श्रीमती पूर्णिमा सरोज जगदलपुर, रूपाली सेठिया कोण्डागांव, श्री राजेश श्रीवास्तव जगदलपुर, श्री महेन्द्र सिंह ठाकुर जगदलपुर, श्री चंद्रशेखर कच्छ जगदलपुर, में.पदमावती किराना स्टोर्स जगदलपुर, श्री दिलिप देव जगदलपुर, तृप्ति परिडा, जगदलपुर, श्री धरमचंद्र शर्मा जगदलपुर, श्री जी.एस. वरखड़े जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल जगदलपुर, श्री अनिल कुमार जयसवाल भिलाई, श्री वीरभान साहू रायपुर, प्रीतम कौर जगदलपुर, श्री मनीष महान्ती जगदलपुर, श्री प्रणव बनर्जी जगदलपुर, शेफालीबाला पीटर जगदलपुर, श्री यशवर्धन यशोदा जगदलपुर, श्री शरदचंद्र गौड़ जगदलपुर, श्री सुरेश विश्वकर्मा जगदलपुर, श्रीमती शांती तिवारी जगदलपुर, श्री विनित अग्रवाल जगदलपुर, श्री एन.आर. नायडू जगदलपुर, श्रीमती मोहिनी ठाकुर जगदलपुर, श्री जयचंद जैन जगदलपुर, श्री कुमार प्रवीण सूर्यवंशी जगदलपुर, श्री भरत गंगादित्य जगदलपुर, श्री मिनेष कुमार जगदलपुर, श्री शिव शंकर कुटारे नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता जगदलपुर, श्री अखिल रायजादा बिलासपुर, श्रीमती दंतेश्वरी राव कोण्डागांव, श्री पी. विश्वनाथ जगदलपुर, श्रीमती रजनी साहू मुबई महाराष्ट्र, श्रीमती वंदना सहाय नागपुर. महाराष्ट्र, श्रीमती माधुरी राउलकर नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा नागपुर, श्री अरविन्द अवस्थी मिर्जापुर, यूपी, श्री देव भंडारी दार्जीलिंग, श्री जगदीशचंद्र शर्मा घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा रश्मि जयपुर, नुपूर शर्मा भोपाल, मो.जिलानी चंद्रपुर, डॉ. अशफॉक अहमद नागपुर, श्री रमेश यादव मुंबई श्रीमती सुमन शेखर ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र., श्रीमती प्रीति प्रवीण खरे भोपाल, डॉ. सूरज प्रकाश अष्ठाना भोपाल, श्री डी.पी.सिंह रायपुर, प्राचार्य दंतेश्वरी महाविद्यालय दंतेवाडा, रोशन वर्मा कांकेर, पूनम विश्वकर्मा बीजापुर,डॉ कौशलेन्द्र जगदलपुर

रेखाचित्र–
श्री नवल जायसवाल

फोटोग्राफी, चित्रकला एवं रेखाचित्रों के कलाकार भोपाल निवासी श्री नवल जायसवाल जी, अपनी रचनाओं से जितना बताते हैं उससे कहीं अधिक अपने मौन चित्रों से बोल पाते हैं।

अपनी अस्सी से भी ज्यादा की उम्र के बाद भी अपनी सक्रियता बनाये रखे हैं वे। उनके लिए रचनाकर्म जीवन में उष्मा लाने का साधन है। कविता, कहानी, आलेख, संस्मरण आदि साहित्यिक विधाओं में अपना लोहा मनवा चुके नवल जी 'बस्तर पाति' से जुड़कर हम सभी का मान बढ़ाने के साथ ही साथ अपनी विशिष्ट राय भी देते रहते हैं।

रचनाकार कृपया ध्यान देवें– आपकी रचना में हमारी संपादकीय टीम के द्वारा आवश्यक सुधार एवं शीर्षक परिवर्तन संभव है। समयाभाव के कारण इसके लिए अलग से पत्राचार संभव नहीं है अतः इसे अपनी स्वीकृति मानते हुए प्रकाशन हेतु रचनायें प्रेषित करें। कमजोर रचनाओं की प्राप्ति और उन्हें प्रकाशित न कर अस्वीकृत करने की अपेक्षा उनमें आवश्यक सुधार कर प्रकाशित करना हमारी दृष्टि में उचित होगा।

कवर पेज– श्री वेंलगूर मण्डावी

बस्तर क्षेत्र की विशिष्ट चित्रकारी के पर्याय बने श्री वेंलगूर मण्डावी जो रहते हैं सुदूर बस्तर के नारायणपुर जिले के गांव में। अपनी परंपराओं को सहेजने की कोशिश उनकी चित्रकारी नित नयी ऊंचाई छू रही है। वे आदिम परंपराओं के संरक्षक बन कर आगे आये हैं। इस तरह के पारंपरिक चित्र गांवों में लोग अपने घरों की दिवार में, पूजा घर में और मृतक की कब्र में बनाते हैं। कुछ चित्र तो शादी विवाह में भी बनाए जाते हैं। इन चित्रों का उद्देश्य बुरी आत्माओं के प्रभाव से बचाव होता है या फिर अपने इष्टदेव का सम्मान। मण्डावी जी के हाथों ने कलात्मकता की ऊंचाई पा ली है।

अंतिम पन्ना फोटोग्राफर के लिए–
श्री अजयसिंह

अजय फोटो स्टुडियो के जादुई फोटोग्राफर अपने कैमरे से जादुई तस्वीरें पैदा करते हैं। उनके पास आने वाले अनेक साधारण शक्ल सूरत वाले भी हीरो हीरोइन की तरह अपनी फोटो खींचवा लेते हैं। अपने शौक को अपने काम में साथ कैसे समाहित किया जाए यह अजय जी से सीखा जा सकता है। वे अपने व्यस्त समय में न जाने कैसे ऐसा सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं, अपनी सूक्ष्म नजरों से वे वही फोटो खींचते हैं जो कुछ विशेषता लिए होती है।